हिन्दी

शीराज़ा

जे. एण्ड के. अकैडमी ऑफ़ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू

द्विमासिक

हिन्दी

जून–जुलाई 2010

प्रमुख संपादक

ज़फ़र इक़बाल मन्हास

संपादक

नीरू शर्मा

जे० एंड के० अकैडमी ऑफ़ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू-180 001

SHEERAZA Regd. No. : 28871/76 June-July 2010
(Hindi)
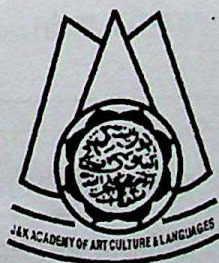
वर्ष : 46 अंक : 2 पूर्णांक : 197
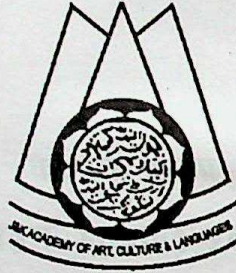
★ पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रकाशक : सचिव, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू-180 001

पत्र-व्यवहार : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू-180 001; दूरभाष : (0191)-2577643, 2579576

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चंद, जालंधर, पंजाब-144 004 दूरभाष : (0181)-2640025

शुल्क दर : एक प्रति 10 रुपये; वार्षिक 50 रुपये

संपादकीय

किसी भी रचना की पूरी समझ के लिए उस जीवन की गहराई को मापना आवश्यक है, जहाँ से रचनाकार की कथा-दृष्टि उदित होती है। इसीलिए भाषा रूपी कसौटी की अपेक्षा अनुभव की दुर्निवारता या प्रामाणिकता की टोह के लिए प्रतीकों या बिंबों का नहीं अपितु चरित्र निर्माण क्षमता, कथानक, संघटन-शक्ति आदि का विश्लेषण ही कथा-समीक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। इसके लिए जिस समीक्षा-भाषा की आवश्यकता होती है, वह कविता की भाषा से थोड़ी भिन्न होती है।

लेखक भाव-अनुभाव को रूप देकर कटु सच्चाइयों के निकट जाने और उसे अधिक स्पष्ट और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए कभी-कभी आत्म-प्रक्षेपन द्वारा ऐसे ही निर्माण करने लगे हैं, जो वैयक्तिकता की गहरी छाप के कारण दुरूह हो जाते हैं। लेकिन जीवन इतना सहज कहाँ है ? सहजीकरण के नारे ने कला और साहित्य के आगे जो लक्ष्मण-रेखा खींच रखी थी, वह टूट रही है। और आज का लेखक सच्चाइयों के नये-नये स्तर तोड़ने की ओर उन्मुख है। स्पष्टत: उसकी दृष्टि के पीछे जीवन का सहज दर्शन है, जो मनुष्य को सामाजिक विकास के पूरे संदर्भ में रखकर निरंतर बदलने वाली सामाजिक सच्चाइयों के प्रकाश में देखता है क्योंकि सामाजिक संबंधों की क्रिया-प्रतिक्रिया के लिए वह अधिक उद्घाटित हो जाता है। परंपरा की राख में दबे-छिपे भावों की वास्तविकताएं नंगी और वस्तु सत्य की तरह कठोर हो उठतीं हैं।

जीवन की सहज गति से रचनाकार का व्यक्तित्व किनारे पड़ गया है अथवा विचारों के कठिन, अस्वाभाविक प्रतिमानों के कारण मन की वे परतें भी सूख गई हैं जिन पर सच्चाइयों के प्रतिबिंब होते हैं अथवा वैयक्तिक कुंठाओं ने उसके चारों ओर एक ऐसा कवच बना लिया है कि सब कुछ में उसे अपने ही आरोपों की तस्वीरें दिखने लगी हैं।

जिस भाषा या साहित्य की संवेदना मरने लगती है उसके पास कुछ भी नया अनुभव करने की शक्ति नहीं होती, इसीलिए उसके पास इने-गिने चरित्र होते हैं जिन्हें वह हेर-फेर कर प्रस्तुत करता है।

हम सभी जानते हैं कि प्रत्येक अनुभव के पीछे एक संसार छिपा होता है। इस संसार की उपयोगिता राजनीतिज्ञों और समाजशास्त्रियों के लिए होगी मगर लेखक के लिए उपयोगी यह संसार नहीं अपितु अनुभव है। वह अपने अनुभव को बिंब के रूप में रचकर उस अनुभव के पीछे छिपे संसार की अभिनव सृष्टि करता है या कहा जा सकता है कि संसार लेखक के अनुभव और रचना की प्रक्रिया में पड़ कर एक दूसरा ही संसार होकर निकलता है।

कोई भी अनुभव विशेष और विशेष से अधिक नया तभी होता है जब लेखक के पास कोई नयी व्याख्या हो। वास्तव में यथार्थ की व्याख्या से जो प्राप्त होता है वह एक बुद्धिजीवी के लिए संग्रहणीय-अनुभव होता है। आज का मानव जैसे चारों ओर होने वाले व्यापारों को देख पा रहा है उसमें घटनाओं के छोरों का समकक्षी हो जाना अनिवार्य है। आज के अनुभव का यदि यह अभिन्न अंग है तो इसकी अभिव्यक्ति कला-कृतियों में और साहित्य में भी होनी चाहिए।

नीरू शर्मा

इस अंक में

☐ आलेख

☐ कविता/गीत/गज़ल

☐ व्यंग्य

कश्मीरी के सांस्कृतिक परिदृश्य में डोगरी उपन्यास
('ललद्यद' के बहाने एक बहस)

❐ डॉ. रतन लाल शान्त

कश्मीरी भाषा में उपन्यास लेखन के प्रति रुचिहीनता को देखते हुए हमारी पड़ोसी भाषा डोगरी में कश्मीरी की आदिकवयित्री ललेश्वरी पर वेदराही के उपन्यास का स्वागत होना चाहिए। 'लाल' का जीवन और लेखन बहुत घटनापूर्ण तथा विविध नहीं, पर उन का व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली है। और उससे कश्मीरी जन, शिक्षित तथा अशिक्षित, विद्वान तथा अज्ञानी पुरुष तथा स्त्री हमेशा प्रभावित हुए हैं। लल को ईश्वरी मां और योगिनी के इलावा तत्त्वबोधिनी कहा गया तथा वह यहां के लोक तथा सांस्कृतिक जीवन का एक वरेण्य अंग बनी। उन के कहे गए कई वाक (वाख) सूक्ति और कहावत की तरह मौखिक तथा लिखित परम्परा का अभिन्न अंग बन गए। छः सौ वर्षों से कश्मीर की सामुदायिक स्मृति में उनकी कविता तथा उनके जीवन-संबंधी सच्ची अथवा कल्पित घटनाएं ऐसे बसी हुई हैं। फिर भी आज तक उनके जीवन की संभव घटना फलाप में बांधकर कोई कहानी, उपन्यास या काव्य नहीं लिखा गया। उनके वाखों की अनुकृति के कई प्रयत्न हुए पर वाखों के पीछे के कवि-व्यक्तित्व को एक जीवन्त कथा-चरित्र के रूप में प्रस्तुत करने की ओर किसी कश्मीरी लेखक का ध्यान नहीं गया। ऐसे में वेदराही का उपन्यास ललद्यद (लल-मां) एक अभिवंदनीय प्रयास है।

उपन्यास लेखन कश्मीरी तथा डोगरी में तकरीबन एकसाथ और एक ही प्रकार की प्रेरणा (प्रगतिवादी आंदोलन) से शुरू हुआ, यद्यपि कश्मीरी में इस घटना से (1950-55) करीब दो दशक पूर्व एक प्रयास हुआ था जो पूर्णतः दृश्य पटल पर उभर कर सामने नहीं आ पाया था। पर आज की स्थिति का पुनरावलोकन करें तो डोगरी में उपन्यास कश्मीरी से थोड़ा आगे ही मिलेगा। इसका श्रेय वेद राही तथा पद्मा सचदेव जैसे लेखकों को जाता है। वेद ने अपने उपन्यास का स्वयं ही अनुवाद (हिंदी में) करके इसे पाठकों के लिए सुलभ बनाया है। ललद्यद नेशनल बुक ट्रस्ट ने 2008 ई. में प्रकाशित किया है।

ललेश्वरी अथवा ललद्यद एक साधारण पंडित परिवार में जन्मी, पली-बढ़ी और एक साधारण मध्यवर्गीय परिवार में ब्याही गईं। उनके वाखों की सार्वभौमिकता तथा समकालीनता के कारण उन्हें लोकप्रियता प्राप्त हुई, इस कारण वे एक असाधारण व्यक्तित्व की स्वामी बन गई। इसी कारण वे एक ऐतिहासिक व्यक्ति कवि बन कर उभरी। उस पर जो कुछ भी लिखा

गया, उसे ऐतिहासिकता की कसौटी पर जरूर कसा जाएगा। ललद्यद पर लिखा हुआ प्रस्तुत उपन्यास भी इस दृष्टि से खरा उतरना चाहिए। बहुत हद तक वेद राही ने इस बात को मद्दे नज़र रखा है और ललेश्वरी को उसके समय के परिप्रेक्ष्य में रखकर उसका चित्रण किया है। पर यह उपन्यास सम्पूर्ण तथा विश्वसनीय ऐतिहासिकता की सारी अपेकक्षाएं पूरा नहीं करता– यह तथ्य भी हम भुला नहीं सकते।

ऐतिहासिक उपन्यास किसी एक या अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों अथवा उन व्यक्तियों के परिवेश तथा काल का सम्पूर्ण चित्र खींच कर पाठक का स्थानांतरण करने की क्षमता रखता है। पाठक पैनी दृष्टि से उपन्यास के चरित्रों के बीच पहुंचता है और यदि व्यक्ति उसके जाने पहचाने तथा काल उसकी कल्पनाओं अथवा उसकी जीवन्त परंपराओं से जुड़ा है तो उसकी आलोचक दृष्टि अनुदीक्षत करने लगती है। 'ललद्यद' के साथ ऐसा होना स्वाभाविक है। चूंकि लल की जीवन-संबंधी बहुत कम सूचना हमें उपलब्ध है, इसलिए उपन्यासकार को उस की कविता में मौजूद संकेतों का सहारा लेना पड़ा है और उन्हीं के आधार पर उन्होंने घटनाएं कल्पित की हैं। इस सारी प्रक्रिया को इतिहास की पृष्ठभूमि ने अपना समर्थन दिया है। यदि यह समर्थन न मिलता तो सत्य का चेहरा इतना उजला न होता।'' (भूमिका से) इतिहास के समर्थन के प्रति लेखक का मन खुला रहा है और इतिहास के नाम पर जो दन्तकथाएं और मन्तव्य लल के जीवन पर आरोपित किए गए हैं, बहुत हद तक लेखक ने उसकी छानबीन की है। लल शैवयोगिनी थी और कश्मीर में शैवमत तथा तांत्रिक योगसाधना दोनों की सैंकड़ों वर्षों की परम्पराएं चल रही थी। शैवसाधना का लल को सीधा अनुभव था जैसा कि उनके वाखों से स्पष्ट होता है। वे साधिका तो थी हीं, उनकेअनुभव की निर्व्याजता तथा सत्यता उनकी कविता में उपमा और रूपक के सहारे ऐसे आई है कि उनकी भाषा के अधिकार तथा सृजनशीलता की उनकी क्षमता चरमबिंदु को पहुँच गई है। वे जितनी सच्ची योगिनी तथा शैव आचार्या के रूप में हमारे सामने आई हैं, उतनी ही सच्ची तथा निश्छल कवि के रूप में भी उभरती हैं। उपन्यासकार वेद राही ने अपने ढंग से ललद्यद की इन दो विशेषताओं को समोने की कोशिश की है। परन्तु लल का परिवेश और समय उपन्यास में पर्याप्त स्थान नहीं पाता। केवल इतना कहना कि शाहमीर के सुलतान बन जाने से कश्मीर की आम जनता ने राहत की सांस ली, एक अधूरा बयान है। यह ठीक है कि लल के गांववासी मामूली लोग थे, जिन पर राज संघर्ष का बहुत कम प्रभाव पड़ता होगा, पर इतिहास हमें बताता है कि स्वदेशी से विदेशी शासकों और वह भी विदेशी धर्म के अनुयायियों के हाथ में प्रशासन जाने से एक भयंकर आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक आलोड़न हुआ, जिसने किसी को अछूता नहीं छोड़ा। स्वयं लल ने भी उस ओर इशारे किए जिसमें एक का उपयोग लेखक ने किया है।

मेरे चित्त क्यों पराए की लत लगी तुझे, असत्य से सत्य का भ्रम कैसे हुआ तुझे तेरी मंदबुद्धि ने तुझे परधर्म के वश में किया। यों तो तू जीवन-मरण आवागमन से आक्रांत रहेगा।

विशेषकर ब्राह्मण वर्ग ने अपने ढंग से इस उहापोह से असहमति प्रकट की तथा इसका प्रतिरोध किया। फिर लेखक के पास इस प्रकार के और कितने अवसर थे जब यह कश्मीर की तत्कालीन परिस्थिति का उल्लेख कर सकता था, क्योंकि लल जगह-जगह घूमती रहती थी। उन के गुरु सिद्धमोल को भी ('सिद्धमोल' उसका नाम नहीं था। 'मोल' अर्थात् पिता या बाबर सम्मान से किसी भी बुजुर्ग संत फकीर पुरुष को कहने का रिवाज आज तक है) राजौरी और काशी घूमने के लिए जाते बताया गया है। समकालीन ऐतिहासिक परिस्थिति की अनुपस्थिति में लल के जीवन तथा कार्यकलाप को जानना दुष्कर है। एक ऐतिहासिक उपन्यास से इस प्रकार की यथासंभव जानकारी की अपेक्षा रहती है।

औपन्यासिक कला की दृष्टि से 'ललद्यद' एक अच्छे तथा सक्षम लेखक का परिचय देता है। कथावस्तु का व्यापार सुनियोजित ढंग से पांद्रेठन से शुरू होता है। पता नहीं यह गांव लेखक को कैसे, क्यों सूझा, जब कि इस बारे में कोई मतभेद नहीं कि लल 'स्यमपुर' की रहने वाली थी जो पांद्रेठन से 6 मील दूर है और मुख्य मार्ग (उस समय भी श्रीनगर अनंत नाग राजमार्ग पर स्थित था) पर स्थित नहीं, न ही वितस्ता नदी के बिल्कुल किनारे पर है जैसा कि उपन्यास में लगता है।) जगहों का नाम नहीं देते हुए लल को कई जगह घूमते और लोगों से परस्पर मिलते क्रिया-प्रतिक्रिया देते हुए दर्शाया गया है। उपन्यास की धुरी होने के कारण लल का चरित्र अन्य चरित्रों जैसे उनके पिता, माता, पड़ोसी, साथी गांवों के मांझी तथा उन्हें जोगिन मानकर उनसे अपनी सांसारिक परेशानियों का निदान मांगने आने वालों के साथ तार्किक ढंग से उभारा गया है। उपन्यास में केवल ज़रूरत पड़ने पर अन्य चरित्र आते हैं और लल के केंद्रीय कवि - व्यक्तित्व को उभारने में सहायक होते हैं। स्पष्ट है कि मां, बाप, पति, सास-ससुर तथा गुरु के अतिरिक्त बाकी सब कल्पित हैं, पर उन की उठान और निरन्तरता को योग्यता के साथ बनाए रखा गया है। उपन्यास का आरंभ लल के युवा काल से होता है, जब वह पोथियां पढ़ने और उससे प्रेरित होने की परिपक्व स्थिति में होती है। अंत तक आते-आते वह बूढ़ी हो चुकी होती है और जीवन-दृष्टि तथा वाक उक्ति दोनों में स्पष्ट परिणति तक पहुँच चुकी होती है। उपन्यासकार ने उसे जीवन-मृत्यु, बल्कि जीवन्त तल्लीनता की स्थिति तक उठा कर छोड़ दिया है, जो इस प्रकार के विकसित व्यक्तित्व की बेहतरीन पराकाष्ठा हो सकती थी। पाठक लल के मानसिक तथा काव्यात्मक विकास के साथ साथ यात्रा करता है, जिसका कारण लेखक द्वारा समय-समय पर कुछ लल वाखों को उद्धृत करना है। अधिकांश वाखों के उद्भव तथा सृजन के लिए लल की मानसिक स्थिति तथा उसके आसपास की भौगोलिक स्थिति का तालमेल बिठाने की अच्छी कोशिश हुई है। (यद्यपि वाखों के बेहतर अनुवाद न होने की कमी बन कर खटकती है) यों, अपने डोगरी उपन्यास का हिन्दी अनुवाद लेखक ने बहुत अच्छा किया है। निस्संदेह वेद राही डोगरी तथा हिन्दी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार रखते हैं।

जैसा कि लेखक ने कहा है, लल के बारे में अधिकतम जानकारी उन्हें लल की कविता से ही मिली है। एक प्रामाणिक जीवनी के अभाव में उनके पास यही एक विकल्प था, जिसका

उन्होंने लाभप्रद प्रयोग किया है। पर किसी भी जीवनी पर आधारित साहित्यिक कृति के लिए परिवेश तथा कथा स्थिति दोनों महत्त्वपूर्ण होती है। वस्तुत: ऐतिहासिक व्यक्ति के परिवेश का पुन: चित्रण करके ही उसे प्रामाणिक बनाया जा सकता है। इस उपन्यास में उस पुन: चित्रण का अधूरापन जगह-जगह खलता है। देश अथवा काल के पुनर्चित्रण के लिए सीधा अनुभव तथा विशद अध्ययन दोनों चाहिए। लगता है लेखक को यहां उस घर द्वार के रखरखाव, उस गांव, उस ग्रामीण भूगोल तथा छ: सौ वर्ष पूर्व के कश्मीर-भूगोल की उस स्थिति की रचनात्मक कल्पना करने का या तो उपयुक्त अवसर नहीं मिला या उन्होंने पर्याप्त खोज नहीं की, जिसमें लल को विश्वसनीयता के साथ रखा जाना चाहिए था। लल कई बार वितस्ता को पार करती है, जबकि इस नदी के दाएं किनारे पर वे सारे कसबे शहर आबाद हैं जिनसे उन का वास्ता पड़ा। विशेषकर घर से निकलकर नदी पार करके वह वहां जाती हुई बताई गई हैं, वह क्षेत्र सामान्यत: बाढ़ में डूबा रहता अथवा उजाड़ होता। इस नदी के दोनों किनारों से जिन व्यक्तियों का कभी कुछ लेना-देना रहा है, वे शहर श्रीनगर से जुड़े रहे हैं, जबकि लल का साधन क्षेत्र वह नहीं रहा है। लल का ''कच्चे थागे से खींच रही हूं नैया......'' वाले वाक को स्थूलरूप में लेकर (यद्यपि उपन्यास में इस वाक में कवयित्री की नैरारथ भावना को भी विचारणीय माना गया है। उस का अनावश्यक विस्तार खलता है। जहां उत्सव-मेलों के बारे में और विवरणों की गुंजाइश हैं, वहीं कुछ उत्सवों के बारे में अधूरी सूचना साफ झलकती है। जैसे यह कि शिवरात्रि पर ''स्थान-स्थान पर मेलों की धूम'' लगती थी, जबकि पुराकाल से यह उत्सव सामूहिक न होकर केवल परिवार की सीमाओं के भीतर मनाया जाता रहा है। मिठाई रिवायती कश्मीरी खाद्य है ही नहीं। बल्कि यह डोगरों, पंजाबियों ने अपने आगमन के साथ घाटी में प्रचारित की। मीठी चीज़ के तौर पर छ: सौ वर्ष पहले केवल 'नाबद' (मिश्री के डले) या सूखा मेवा चलता था। कश्मीर में पत्तल पर चावल खाने खिलाने की किसी रीत का कोई संकेत इतिहास में मौजूद नहीं। शादी के समय लड़की के सिर पर 'तरंग' तह-दर-तह एक लंबी प्रक्रिया के साथ बांधा जाता है। 'तरंग' आज रेडीमेड हो सकता है, जद्यपि अभी तक ऐसा कुछ नहीं है, छ: सौ वर्ष पूर्व तो शादी की यह रस्म और लंबी तथा उलझी हुई रही होगी। उपन्यास में तो उसे दुल्हन को सीधे 'पहनाया' गया है। लल के पति दामोदर को गांव की स्त्रियों की बनी चीज़ें खरीदकर नगर की मंडी में बेचने वाला व्यापारी बताया गया है- यह कल्पना भी सामान्यज्ञान की सीमाओं में नहीं समा सकती। कश्मीरी पंडित घरों में कपड़ों की किनारी ('डोर') बुनने या चरखा कात कर सूती या पश्मीने का धागा तैयार करने की परिपाटी रही है। डोर सामान्य स्त्री फिरनों में प्रयुक्त होती और सूत के धागों से कुछ लोग घरों में देसी कपड़ा बुनते। पश्मीना आम लोगों के लिए केवल विशेष अवसरों के उपयुक्त कपड़ों-शालों के लिए होता और उच्च वर्गीय धनी लोगों के लिए आम अवसरों के लिए भी। पर 14वीं शती में ये घरेलू उद्योग इतने विकसित थे कि इनकी मंडी लगती, ऐसा एतिहास नहीं बताता। लेखक ने लल के वाख - गुरु ने मुझ से एक बात कही, ... तभी से मैं नंगी नाचने लगी हूं की तथ्यता की व्याख्या जिस कल्पित घटना से की है वह भी बहुत विश्वसनीय नहीं। उपन्यास में लल एक दिन नदी पार करके अपना फिरन नाव में ही छोड़

जाती है कि मांझी को पारिश्रमिक मिले। उसके बाद वह जब भी दिखती है, बहुत थोड़े जीर्ण-गीर्ण वस्त्रों में अधनंगी हालत में घूमती है।

शायद इस घटना की कल्पना का बीज लेखक ने लल के वाख - जेब में देखा, फूटी कौड़ी भी न थी, अब नदी पार करने का पैसा कहां से दूं? से लिया है। इस प्रकार के तमाम वाखों को लल की शैवसाधना तथा आत्ममंथन के प्रकाश में ही आलोचकों ने देखा है, न कि इन्हें लल के जीवन की किसी भौतिक घटना से जोड़ा है। फिर भी हम लेखक ने ऐसे प्रयास से सहमत हैं, जहां वाखों की संभय प्रेरणा के बारे में उन्होंने किसी भौतिक घटना की कल्पना की है। यह कल्पना ज़्यादा उर्वर, ज़्यादा विश्वसनीय हो सकती थी, वह अलग बात है। लल के बारे में जब कोई और उपन्यास लिखा जाएगा, जिसका लेखक उपर्युक्त कमियों से मुक्त होगा, तब भी कई बेहतर संभावनाएँ रहेंगी। पर इतना ज़रूर है कि लेखक को न सिर्फ लल के जीवन और रचना में डूबना होगा बल्कि उस शैवसाधना के हर उस विस्तार को उसकी गहराई तथा कश्मीरी जीवन (और उसी में लल के घर बार तथा व्यक्तिगत जीवन) में पैठ को समझना होगा, जो आज तक परम्परा तथा नित्यकर्म ही नहीं, बल्कि ज़िंदगी के दैनंदिन कार्यकला में मौजूद तथा दृश्यमान है। लल की ज़िंदगी का केवल विहंमय दृष्टि से अवलोकन नहीं हो सकता है, उसका सिंहावलोकन करने से बचा नहीं जा सकता।

जैसा इस लेख के आरंभ में कहा गया है, कुल मिला कर ऐसे गंभीर तथा सुप्रसिद्ध विषय पर वेदराही का उपन्यास एक अच्छा प्रयास है। न्यूनताएं और त्रुटियां इस उपन्यास की कला की समझ तथा इस की प्रवाहपूर्ण शैली से आनंदित करने में रुकावट पैदा नहीं करतीं। लल का आत्मसंघर्ष उसके वाखों में उसी तरह ध्वनित होता है जिस तरह कश्मीर शैवदर्शन। इन दोनों के पीछे एक मुखर योगिनी तथा एक सर्जक संवेदनशील कवि सदा उपस्थित रहती है। इस उपस्थिति की पहचान कर पाना बड़े जीवट का काम है। वेद राही ने अपनी सधी कलम से यह पहचान कराने के उपक्रम किया है और यह उपक्रम स्वागत योग्य है।

०००

कुछ तथ्यों की त्रुटियां भी रह गई हैं। जैसे कि 'तंत्रलोक' (वस्तुतः तंत्रालोक) नागार्जुन की रचना है। 'तंत्रालोक' अभिनवगुप्त की कृति है जो प्रसिद्ध शैवदार्शनिक थे नागार्जुन बौद्ध विद्वान थे।

'नारी माँसलता' का उदात्तीकरण और 'बाणभट्ट की आत्मकथा'

❑ डॉ. परमेश्वरी शर्मा

नारी समाज सामाजिक क्रियाकलापों का अटूट अंश है। वास्तविकता तो यह है कि विश्व-सृष्टि में नारी का अभूतपूर्व योगदान रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षण में उसने सभ्यता और संस्कृति के विकास में सक्रिय योग दिया है, दे रही है और देती रहेगी। समर्पण, उत्सर्ग, और प्रेम की साक्षात् प्रतिमा नारी अनेक रूपों (मां, बेटी, बहन, पत्नी इत्यादि) में परिवार, समाज और राष्ट्र की मंगल विधात्री है। किन्तु विडम्बना यह है कि विश्व की इस अमूल्य निधि को उसका उचित स्थान एवं महत्त्व नहीं प्राप्त हो सका है। आज सबसे बड़ी समस्या नारी-अस्तित्त्व की है। कुछ अपवादों को छोड़कर अतीत से लेकर आज तक नारी पुरुष की दृष्टि में उपेक्षणीय रही है। दर्पान्ध पुरुष ने विश्व की इस सुकुमार सृष्टि को मात्र उपभोग्य मानकर अपनी वासनापूर्ति का साधन माना, उसका मनचाहा उपभोग किया है। पुरुष की निर्मर्याद महत्त्वाकाक्षाओं एवं वासनाओं का शिकार बनी नारी का उद्धार आधुनिक युग की माँग है। मार्क्स और एंगिल्स ने 'द ओरिजन ऑफ प्राइवेट प्रापर्टी' में स्त्री को पूँजीवादी सभ्यता का प्रथम शोषित बताया है जिसे समय-समय पर उदारवादी समाजवादियों ने अपनी टिप्पणियों से एक ठोस धरातल दिया है किन्तु सच तो यह है कि उस की स्थिति ठीक वैसी ही बनी हुई है जैसी सामन्तयुग में थी। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का कथावृत दलित-त्रस्त नारी रूपी धुरी के इर्द गिर्द घूमता है। यह एक ऐसी क्लासिक कृति है जो अपने समय से पूरी तरह जुड़ी होते हुए भी वर्तमान युग के सवालों को अपने में संजोए हुए है। इसमें इतिहास और कल्पना का समन्वय है। इतिहास की पार्श्वभूमि पर रचित यह उपन्यास केवल घटनाओं और तिथियों का आकलनभर नहीं है अपितु इसमें व्यापक युग सत्य को पाने की चेष्ठा की गई है। हर्षकालीन समाज जिन विसंगतियों से ग्रसित था वे आज भी विद्यमान हैं। नारी सम्बन्धी, आज भी हमारा समाज मध्ययुगीन मानसिकता से पूर्णतया मुक्त नहीं हो सका है। सामन्ती-वृत्ति के कुसंस्कार आज भी हमारे समाज को खोखला कर रहे हैं। प्रस्तुत उपन्यास अतीत की कथा पर भारतीय नारी की विविध समस्याओं को उद्घाटित करते हुए उनके उचित समाधान का सफल प्रयास है।

हिन्दी विभाग जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू-180006

उपन्यास का मुख्य कथा सूत्र एक अपहृता नारी को मुक्त करा कर उसके पिता को सौंपना है। यद्यपि इस कार्य का सम्पादन बाण और निपुणिका के माध्यम से हुआ है तथापि इस कथा के माध्यम से देश-काल का व्यापक चित्र उपस्थित हुआ है। युग व्याप्त नारी समस्या की गहराई तक पहुंचने का प्रयत्न लेखक ने बड़ी कुशलता से किया है और इसी कारण उपन्यास आधुनिक जीवन-संदर्भों से सम्बद्ध हो जाता है। उपन्यास के सभी नारी पात्रों निपुणिका, भट्टिनी, महामाया, सुचरिता इत्यादि की दारुण जीवन-गाथा नारी सम्बन्धी विविध समस्याओं को उद्घाटित करती है। निपुणिका का जीवन वैधव्य की अश्रुप्लावित करुण गाथा है। आर्थिक-विपन्नताग्रस्त इस हतभागिनी नारी पर विवाह के एक वर्ष बाद ही वैधण्व का व्रजपात हो जाता है। प्रतिकूल पारिवारिक परिस्थितियों एवं सामाजिक बन्धनों के परिणामस्वरूप उसके समक्ष ऐसा कोई विकल्प नहीं रह जाता है जिससे वह पुनः जीवन की सार्थकता प्राप्त करती। फलतः समाज की ओर से सान्त्वना एवं सहयोग के स्थान पर उसे प्राप्त होता है तिरस्कार एवं निर्यातन। विवश होकर उसे घर से भागना पड़ता है। उस की व्यथा प्रस्तुत पंक्तियों में सहज ही उद्घाटित हो जाती है-'मेरी शपथ करके तुम सत्य-सत्य कहो मेरा ऐसा कौन-सा पाप चरित्र है जिसके कारण मैं विदारुण दुःख की भट्टी में आजीवन जलती रही ? क्या स्त्री होना ही मेरे सारे अनर्थों की जड़ नहीं है ?'[1]

वास्तविकता तो यह है कि समाज कभी भी निपुणिका जैसी स्त्री को उसका उचित स्थान देने को प्रस्तुत नहीं होता। समाज की संकीर्णताएं ही वस्तुतः नारी की दुर्गति का कारण हैं। समाज की सम्वेदनशून्यता बाणभट्ट के शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है-'वह एक कुलभ्रष्टा स्त्री है। उसके सद्गुणों का समाज में क्या मूल्य है ? दुर्गुणों की तो फिर भी कुछ न कुछ पूछ है ही।''[2] इसी प्रकार सुचरिता की गाथा एक पति परित्यक्ता स्त्री की है। अपने उत्तरदायित्त्व को भुलाकर पत्नी का परित्याग करने वाले पलायनवादी पुरुष को नियंत्रित करने के लिए हमारी जड़ सामाजिक व्यवस्था में कोई विधान नहीं है। सारे विधान केवल नारी के लिए हैं। प्रस्तुत उपन्यास में विरतिवज्र का अपनी परिणीता सुचरिता का परित्याग कर सन्यासी हो जाना और सुचरिता का दारुण दुःखों की अग्नि में परितप्त होना मूलतः पुरुष की पलायनवादी प्रवृत्ति का ही परिणाम है। सुचरिता द्वारा विरतिवज्र की आत्मसाधना में आजीवन कठोर व्रत-निर्वाह का प्रण करने के बाद भी समाज उसके प्रति स्वच्छ दृष्टिकोण अपना नहीं सका है। अपनी परित्यक्ता होने की व्यथा वह इन शब्दों में व्यक्त करती है-''यह तो नई बात नहीं सुन रही हूँ, आर्य। प्रजा ने इसके पूर्व तो कभी मेरे लिए कोई परवाह नहीं की। इस नगर में मैं नगर के विडम्ब-रसिकों का छन्दानुरोध नहीं कर सकी हूँ, इसलिए उन लोगों ने मेरे विषय में बहुत-सा अपवाद फैला रखा है।''[3] यद्यपि अपने जीवन का अधिकांश वह परित्यक्ता के रूप में व्यतीत करती है फिर भी विरतिवज्र को पुनः पाकर वह भारतीय नारी के आदर्श स्वरूप, अपनी अगाध श्रद्धा एवं एकनिष्ठता से विचलित नहीं होती। तभी तो वह

कहती है–'मुझे तो जो भी दु:ख-सुख मिलेगा उसी से अपने नारायण की पूजा करूंगी। यह हथकड़ी भी उन्हीं को अर्ध्यरूप में उपहृत है, आर्य।''[4] नारी जीवन की दारुण-गाथा की समाप्ति यहीं पर नहीं हो जाती। सर्वाधिक घृणित और मार्मिक स्थिति तो वह है जब निरीह सुकुमार नारियों का बलात् अपहरण कर उन्हें ऐश्वर्य का साधन मानकर उनसे मनमाना व्यवहार किया जाता है। पुरुष की यह कुप्रवृत्ति आज भी भारतीय समाज के लिए एक कलंक है।

पुरुष की दृष्टि में नारी की अपनी गरिमा-मर्यादा कोई स्थान नहीं रखती और न ही समाज उन्हें कोई महत्त्व देता है। आत्मकथा में स्थानीश्वर के भण्ड का तुमुरमिलिन्द की बेटी चंद्रदधिचि (भट्टिनी) का अपहरण उपर्युक्त कुत्सित प्रवृत्ति का स्पष्ट प्रमाण है। महामाया अपनी व्यथा प्रकट करते हुए कहती है–''मैं तुम्हारे देश की लाख-लाख अपमानित लांछित एवं अकारण दंडित बेटियों में से एक हूँ। कौन नहीं जानता कि इस घृणित व्यवसाय के प्रधान आश्रय सामंतों और राजाओं के अनत:पुर हैं ? आप में से किसे नहीं मालूम कि महाराजधिराज की चामर धारणियां और करंकवाहिनियां इसी प्रकार भगाई और खरीदी हुई कन्याएं हैं–क्या निरीह प्रजा की बेटियां उनकी नयनताराएं नहीं हुआ करतीं ? क्या राजा और सेनापति की बेटियां का खोजा जाना ही संसार की सबसे बड़ी दुर्घटनाएं हैं ?''[5] इसी समस्या की व्यापकता को उद्घाटित करते हुए निपुणिका इसे समाज में लगा हुआ घुन बताती हैं जो महानाश का प्रतीक है। उपन्यास में विविध प्रसंगों एवं पात्रों के माध्यम से नारी-सम्बन्धी अनेक समस्याओं को उद्घाटित किया गया है। निपुणिका के शब्दों में 'नारी का जन्म पाकर लाँछन पाना सार नहीं है'' लेखकीय अभीष्ट का द्योतक हैं।

युगों से अबला मानी जाने वाली नारी को समाज के क्रूर बन्धनों एवं कुत्सित दृष्टि का कोपभाजन बनकर लाँछित जीवन व्यतीत करना पड़ा है। यह समाज की मदान्धता ही तो है। बाणभट्ट के शब्दों में–'वह कुलभ्रष्टा स्त्री है। उसके सद्गुणों का समाज में क्या मूल्य है ? दुर्गुणों की तो फिर भी कुछ-न-कुछ पूछ है।''[6] आजीवन शोषित और तिरस्कृत नारी को उचित स्थान प्रदान कर समाज में उसका महत्त्व स्थापित करना द्विवेदी जी का मन्तव्य है जो उपन्यास के आरम्भ में ही बाण के शब्दों में उद्घाटित हो जाता है–''सारे जीवन मैंने स्त्री-शरीर को किसी अज्ञात देवता का मन्दिर समझा है। –उस मन्दिर को कीचड़ में धंसा छोड़ जाना मेरे वश की बात नहीं है। –मैं तुम्हें कीचड़ में धंसा छोड़ कर नहीं जा सकता।''[7] बाण तो निपुणिका की स्थिति को भांपते हुए उसके उद्धार की इच्छा व्यक्त करता है किन्तु निपुणिका एक ऐसी नारी के उद्धार की इच्छा व्यक्त करती है जिसे बलात् अपहृत किया गया है–'देव-मन्दिर का उद्धार करना है ?–भट्ट अब तक तुमने नारी में जो देव मन्दिर का आभास पाया है वह तुम्हारे भोले मन की कल्पना थी। –तुम असुर गृह में आबद्ध लक्ष्मी का उद्धार करने का साहस रखते हो, मदिरा के पंक में डूबी हुई कामधेनु को उभारना चाहते हो ?[8] निपुणिका द्वारा कही गई उपर्युक्त पंक्तियां केवल निपुणिका की ही नहीं अपितु युग-युग से छलित एवं शोषित नारी जाति की पुकार का प्रतिनिधित्व करती हैं। हमारे समाज में वासना के पंक में

धंसी हुई किसी एक भट्टिनी की नहीं अपितु हज़ारों भट्टिनियों के व्यथित हृदय अपने उद्धार की कामना कर रहे हैं। इसी कारण बाण को केवल निपुणिका एवं भट्टिनी को मुक्त कराने में ही अपना जीवन सार्थक प्रतीत नहीं होता। यह कहता है मैंने एक भट्टिनी का उद्धार किया है सही, पर मुझे मालूम है कि इस अन्त:पुर में कितनी भट्टिनियां हैं। ऐसे अन्त:पुरों की संख्या यहीं तो समाप्त नहीं हो जाती।''[9]

नारी सम्बन्धी पूर्व प्रचलित सब धारणाओं का निराकरण करते हुए बाण के ही शब्दों में लेखक ने अपना मन्तव्य स्पष्टांकित किया है-'साधारणतया जिन स्त्रियों को चंचल एवं कुलभ्रष्टा माना जाता है उनमें एक दैवीय शक्ति भी होती है। यह बात लोग भूल जाते हैं मैं नहीं भूलता। मैं स्त्री शरीर को देव-मन्दिर के समान पवित्र मानता हूँ उस पर की गई असंयत टीकाओं को मैं सहन नहीं कर सकता।''[10] लेखक के अनुसार नारी परम पुनीत है, विश्व-मंगल-विधायिनी है और शक्ति रूपा है। ''देवमन्दिर को जिस प्रकार स्पर्श नहीं किया जाता बल्कि उसकी आराधना, उपासना एवं श्रद्धा की जाती है, उसी प्रकार नारी भी भोग की वस्तु नहीं श्रद्धा की वस्तु है।''[11] इसीलिए उसे लांछित एवं अपमानित करना मनुष्य का धर्म नहीं है। नारी के जिन रूपों को हम कुत्सित एवं भ्रष्ट कहते हैं वे उसकी दर्पान्ध पुरुष समाज द्वारा प्रदत्त विवशताएं हैं अन्यथा लेखकीय दृष्टि के अनुसार-जहाँ कहीं भी अपने आप को उत्सर्ग करने की, अपने आप को खपा देने की भावना प्रधान है वहीं नारी है। ''जहां कहीं दु:ख-सुख की लाख-लाख धाराओं में अपने को दलित द्राक्षा के समान निचोड़ कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रधान है, वहीं नारी तत्व है;-शक्ति तत्व है।''[12] नारी की महत्ता व्याख्यायित करते हुए लेखक ने उसे निषेध-रूपा माना है उसकी मान्यता है कि वह आनंदभोग के लिए नहीं अपितु आनन्द लुटाने के लिए आती है। इसलिए विश्व मानव का यह परम कर्त्तव्य है कि विश्व की इस अमूल्य निधि को उसका उचित सम्मान दे।

वास्तव में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी स्त्री और पुरुष को एक-दूसरे का पूरक मानते हैं, वे उन्हें शिव और शक्ति का समन्वित स्वरूप मानते हैं। नारी शक्ति का नियन्त्रण पाकर ही पुरुष सब कुछ देकर भी सर्वस्व प्राप्त कर लेता है। नारी विहीन तपस्या को लेखक संसार की भद्दी भूल मानता है। एक स्थान पर लेखक कहता है-''पुरुष वस्तु विच्छिन्न भावरूप सत्य में आनन्द का साक्षात्कार करता है-जो साधनाएं या तपस्याएं त्रिपुर भैरवी के समान मंगलमयी हैं, ग्रहण करके नहीं चलता उसकी तपस्या अधूरी रह जाती है।''[13] मूलत: लेखक ने नारी के उदात्त रूप को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। किन्तु नारी उद्धार की भावना में जो भाव निहित है वह मात्र नारी को यथोचित सम्मान देने की भावना ही है। बाणभट्ट ने इसीलिए नारी को अपनी तपस्या का साध्य माना है, देवमन्दिर मानकर उसकी आराधना की है किन्तु उसने तलवा नहीं चाटा। क्योंकि नारी का वास्तविक रूप वही है जो पुरुष के काम चक्षुओं को उद्घाटित कर उसके हृदय में माँसलता एवं पशुता के स्थान पर स्वच्छ एवं निर्मल दृष्टि उत्पन्न करे। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि डॉ. द्विवेदी ने भट्टिनी का बाण के द्वारा उद्धार करवा कर विश्व नारी-उद्धार की कामना व्यक्त की है। उन्हीं के अनुसार नारी विश्व की

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु है, विश्व सृष्टि का स्रोत इसी में है। हृदय का यह अनमोल पदार्थ जो पुरुष में मानवता, करुणा, संवेदना, वासुदेव कुटुम्बकम् का भाव पैदा कर सकता है वह नारी में ही निहित है। अत: विश्व कल्याणी इस शक्ति का अपमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि–
–'नारी देह वह स्पर्शमणि है जो ईंट को भी सोना बना देती है।''[14]

संदर्भ

1. बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 255
2. वही, पृ. 23
3. वही, पृ. 223
4. वही, पृ. 222
5. वही, पृ. 203
6. वही, पृ. 23
7. वही, पृ. 22
8. वही, पृ. 26
9. वही, पृ. 101
10. वही, पृ. 18
11. वही,
12. वही, पृ. 156
13. वही, पृ. 91
14. वही, पृ. 186

ooo

जम्मू में शास्त्रीय संगीत परंपरा

❒ सविता बक्शी

हमें इस बात का गर्व हो सकता है कि जम्मू-कश्मीर की धरती ने संगीत, कला, साहित्य आदि के क्षेत्र में सुप्रसिद्ध गायक, वादक, लेखक तथा चित्रकारों को जन्म दिया है।

आठवीं शताब्दी में मतंग मुनि द्वारा लिखा हुआ बृहद्देशी ग्रन्थ मिलता है। जिसमें उन्होंने मूर्च्छनावाद के सम्बन्ध में कश्यप ऋषि का वर्णन किया है और बताया है कि वह मतंग के पूर्वज थे। कश्यप ऋषि के नाम से ही कश्मीर का नाम पड़ा था। आचार्य अभिनव गुप्त ने भी मूर्च्छनावाद का खण्डन किया है। यह भी हमारी जम्मू-कश्मीर की धरती से ही सम्बन्धित है।

तेरहवीं शताब्दी में पं. शारंगदेव जी हुए हैं जिन्होंने एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ संगीत रत्नाकर लिखा है इनके पितामह सोडल भी कश्मीर के रहने वाले थे।

विद्वान फ़कीरउल्ला सन् 1700 ई. में औरंगज़ेब के शासनकाल में हुए हैं। जिन दिनों फ़कीरउल्ला कश्मीर के सूबेदार थे, उन दिनों उन्होंने भारतीय रागों की फारसी नगमों से तुलना की। जिन मिलते हुए रागों का वर्णन उन्होंने किया उनके नाम इस प्रकार हैं :-

'गिज़ाल' और 'षट राग' मिलते-जुलते हैं, 'षट राग', 'रामकली राग' का उल्टा है। दर्गाह शुद्ध तोड़ी से मिलता है। 'नैरज राग' कल्याण की तरह है। 'रास्त राग' 'नट' के समान है। 'इराक राग' 'पुरिया' धनाश्री से मिलता है। इसके अलावा महाराज मानसिंह की संगीत सेवाओं का फ़कीरउल्ला पर विशेष प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप फ़कीरउल्ला ने राजा मान सिंह द्वारा लिखित 'मानकुतूहल' ग्रंथ का फारसी में अनुवाद राग दर्पण के नाम से कर डाला। इनका विश्वास था कि 'राग दर्पण' के प्रकाशन से भावी संगीत कलाकारों को भरत मुनि के 'नाट्य-शास्त्र', 'संगीत रत्नाकार' और 'संगीत दर्पण' आदि ग्रन्थों की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। फ़कीरउल्ला ने जो भारतीय संगीत को सदैव धार्मिक दृष्टि से आँका। जीवन में जो धन कमाया वह सब उन्होंने गायकों की सेवा में लगा दिया। 'मानकुतूहल' के फारसी अनुवाद में उनकी लाखों मुद्रायें खर्च हो गईं। जम्मू-कश्मीर के महाराज रणबीर सिंह के समय पंडित काका राम शास्त्री का वर्णन मिलता है जो संगीत के एक प्रकांड पण्डित थे। उनकी एक हस्त लिखित पुस्तक 'संगीत महोददी' मिलती है। जिसका एक भाग रघुनाथ पुस्तकालय में अभी भी मौजूद है। दूसरा भाग बहुत पहले लाहौर के किसी प्रैस से प्रकाशित किया गया था। श्री काकाराम शास्त्री ने अपनी हस्तलिखित पुस्तक में इस बात का उल्लेख किया है कि सुप्रसिद्ध गायक बैजु बावरा भी जम्मू की धरती पर आए थे।

कहते हैं कि एक दिन बैजु यमुना के तट पर केदारा रागिनी साध रहे थे। कुछ दूर उन्हें एक बालक का रूदन सुनाई पड़ा उन्होंने एक अज्ञात शिशु को रोते हुए पाया और उसे उठा लिया और आश्रम में ले गए गुरु की आज्ञा से उस बालक का नाम गोपाल रखा। धीरे-धीरे बालक बड़ा हुआ और बैजु के संरक्षण में स्वर-साधना करने लगा। कुछ समय बाद बैजु और गोपाल चंदेरी चले गए। चंदेरी में बैजु के निवास-स्थान के पास कला और प्रभा नाम की दो सुन्दर कन्याएं थीं, वे दोनों बहनें बैजु जी से संगीत सीखने लगीं। कुछ समय बाद गोपाल और प्रभा का विवाह हो गया। प्रभा को एक कन्या उत्पन्न हुई। बैजु ने उस नवजात कन्या का नाम मीरा रखा, मीरा चंद्रकला की भान्ति बढ़ने लगी और बैजु का सारा स्नेह और संपूर्ण आशाएं मीरा पर केन्द्रित हो गईं। धीरे-धीरे मीरा का स्नेह ही बैजु का एक सीमित संसार बन गया। एक दिन वह बड़ी तन्मयता से चन्देरी के निकटवर्ती वन में कल्यान राग का आलाप कर रहे थे उसके स्वर के प्रभाव से सारा वन संगीतमय हो गया। उसी समय कुछ कश्मीरी व्यापारी उसी मार्ग से होकर व्यापार के लिए ग्वालियर की ओर जा रहे थे। वे सब उनके संगीत पर विमुग्ध हो गए। महाराजा कश्मीर की गुण ग्राहता की बढ़ाई करते हुए उसे भान्ति-भान्ति के प्रलोभन दे कर अपने साथ कश्मीर ले गए और गोपाल बैजु से छुप कर सपरिवार कश्मीर उनके साथ चले गए।

गोपाल जब कश्मीर पहुंचा तो उन व्यापारियों ने उसे एक अनुपम रत्न कह कर महाराजा कश्मीर के सम्मुख उपस्थित किया। महाराजा गोपाल का संगीत सुन कर बहुत प्रसन्न हुए और अपने दरबार का प्रधान गायक बना कर उसे सम्मानित किया।

महाराजा ने उसके संगीत से प्रसन्न होकर कई बार उसके गुरु का नाम जानने की कोशिश की लेकिन कृतघ्न गोपाल ने यही कहा कि मेरा कोई गुरु नहीं है।

कुछ समय बाद बैजु को जब यह मालूम हुआ कि गोपाल कश्मीर में दरबारी गायक के पद पर आसीन है तो उससे मिलने तथा मीरा और प्रभु को देखने के लिए कश्मीर पहुंचे। वहीं पर भरे दरबार में गोपाल से इनकी गायन प्रतियोगिता हुई। गोपाल ने महाराजा कश्मीर से पहले कह रखा था कि मेरा कोई गुरु नहीं है, किन्तु जब बैजु ने अपने रचित धुपद वहां सुनाए तो यह बात उसके सामने खुल गई कि गोपाल के गुरु यही हैं। गोपाल की कृतघ्नता और फिर उसकी वहीं मृत्यु हो जाने से उनके हृदय को इतना धक्का लगा कि उन्होंने सन्यास ले लिया और कश्मीर के जंगल तथा पहाड़ियों में विलीन हो गए।

जम्मू-कश्मीर के राज दरबार में संगीत सम्मेलन हुआ करते थे। जिसमें भारतवर्ष के महान संगीतकार अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। उन दिनों जो महान संगीतकार जम्मू में आए उनमें श्री विष्णुदिगम्बर पुल्सकर, श्री हनुमान (कत्थक), उस्ताद अमीर खाँ (बीनकार), उस्ताद अशिक अली खां (पटियाला घराना), उस्ताद मीरा बक्श (शामचौरासी) इत्यादि शामिल थे। डॉ. कर्ण सिंह भी उस्ताद विलायत हुसैन साहिब से संगीत सीखते रहे। मलिका पुखराज भी दरबारी गायिका थीं।

जम्मू में ही आज से 100 वर्ष पूर्व पण्डित दुर्गा दत्त जी हुए हैं, जिन्होंने लाहौर में जाकर पं. विष्णु दिगम्बर जी से गाना सीखा। आज से 75 वर्ष पूर्व पण्डित दुर्गा दत्त ने संगीत महाविद्यालय की नींव रखी थी। यह उस समय की बात है जब संगीत को अच्छी नज़र से नहीं देखा जाता था। उस समय पण्डित जी ने बहुत से शिष्य तैयार किये जिनमें प्रमुख थे पण्डित राम प्रसाद, लाला कंठु राम, पण्डित जीवन नाथ रावल, पण्डित कांशी राम, हकीम श्री परशुराम और प्रसिद्ध पार्श्व गायक श्री कुन्दन लाल सहगल। उन दिनों पण्डित रामचन्द्र शाह जी भी अपने घर में बच्चों को संगीत शिक्षा देते थे। अखनूर के पण्डित जिया लाल बसंत ने भी जम्मू में संगीत विद्यालय चलाया। वह 6 महीने जम्मू तथा 6 महीने श्रीनगर में रहते थे। इन्होंने बहुत ही छोटी उम्र में संगीत शिक्षा देनी शुरू कर दी थी। जियालाल बसन्त जी ने खुद गुरु दीनानाथ जी से संगीत शिक्षा पाई थी। उन्होंने और भी कई उस्तादों से संगीत सीखा जो उन दिनों जम्मू में आए बाद में बसंत जी मुम्बई जा कर बस गए। बसन्त जी, दिलरूबा, सितार, सरोद, तबला, वायलिन आदि वाद्य भी बजाते थे। बसन्त जी की प्रथम पुस्तक नैया लाहौर में 1940 में प्रकाशित हुई। दूसरी पुस्तक महफिल 1956 में प्रकाशित हुई, तीसरी पुस्तक पतवार 1960 से बम्बई में प्रकाशित हुई। अभी छपने वाली बसंत जी की लगभग 20 किताबें बाकी हैं। उनके मशहूर शिष्यों में श्री इन्द्र गोपाल, श्री कृष्ण गोयल, डॉ. जे. आर. शर्मा, कुमारी शशि बसन्त, स्व. श्री पी. डी. बाली, श्री के. डी. एस. बाली, कुमारी कान्ता खोसला और पार्श्व गायक श्री सुरेश वाडेकर शामिल हैं।

पण्डित मंसा राम जी भी संगीत महाविद्यालय में सिखाते थे। बाद में पण्डित दुर्गा दत्त जी के नाम पर इस विद्यालय का नाम **'दुर्गा संगीत विद्यायल'** पड़ गया। पण्डित राम प्रसाद जी भी इस विद्यालय में सिखाते रहे हैं। उनके कुछ मशहूर शिष्यों में से श्री ऋषिकेश उपाध्याय, श्री बी. एस. बाली, श्री नवल किशोर और श्री शिव कुमार जी हैं। इसी विद्यालय में सीखाने के लिए श्री कृष्ण राव भी आए। कहा जाता है कि जब रात को वो गाते थे तो गधाधारी मन्दिर तक इनकी आवाज पहुंचती थी। बनारसी दास पाठक भी इस विद्यालय में आए उन्होंने पं. अमीचन्द जी से संगीत शिक्षा प्राप्त की थी। पण्डित अमीचन्द दरबारी गायक थे।

महाराजा प्रताप सिंह जी के समय स्वर्गीय पं. जगदीश दत्त राज पण्डित थे। उन्होंने सरदार हरनाम सिंह जी से तबला सीखा था। सरदार हरनाम सिंह जी दरबार में तबला बजाते थे।

जम्मू के ही पण्डित उमादत्त शर्मा भारत के मशहूर संगीतकारों में से एक थे। उन्होंने वाराणसी के रामदास जी से शिक्षा पाई थी। यह तबला भी बहुत अच्छा बजाते थे। उन्होंने ज़म्मू में संगीत विद्यालय खोला हुआ था। बाद में उमादत्त जी रेडियो कश्मीर में 'म्यूजिक कम्पोज़र' के पद पर रहे। उनके शिष्यों में से उनके अपने सुपुत्र डॉ. शिव कुमार शर्मा, श्री

के. एल. वर्मा, श्री बिन्दराबन, श्री हंसराज तथा श्री मूलराज हैं। सुप्रसिद्ध तबलावादक उस्ताद अल्ला रक्खा भी जम्मू से थे। उन्होंने उस्ताद कादिर बक्श से तबला बजाना सीखा था। उस्ताद जी दुनिया के मशहूर कलाकारों में से एक हैं। इनके पुत्र जाकिर भी मशहूर तबला वादकों में गिने जाते हैं। डॉ. शिव कुमार शर्मा बतौर संतूर वादक पूरी दुनिया में जाने जाते हैं। इस साज की ऊँचाई तक पहुंचाने का श्रेय इन्हें ही जाता है। जिन महान कलाकारों ने जम्मू में आकर अपनी कला का प्रदर्शन किया उनमें प्रमुख हैं:- 'आफताबे मौसिकी' उस्ताद फैयाज खाँ, (आगरा घराना), मुहम्मद दवीर खाँ वीणा वादक, बीनकार श्री कृष्णराव इन्दौर वाले, डा. कृष्णराज इन्दौर वाले, डॉ. कृष्णराव शंकर पण्डित, ग्वालियर के रहीमुद्दीन डागर, डागुर बंधु, उस्ताद इलियास खाँ सितार वाले, पण्डित दिलीप चन्द्र बेदी, श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी, गिरजा देवी, पं० भीमसेन जोशी, पं० जसराज, उस्ताद अल्ला रक्खा खाँ, पं. किशन महाराज, कण्ठे महाराज, निखिल बैनर्जी, पण्डित राम चतुर मलिक, सियाराम तिवारी, श्रीमती मालविका कानन, श्री एकानन, महादेव (कत्थक), पन्नालाल (कत्थक), श्री देवव्रत चौधरी, शिवकुमार शर्मा, डा. एल. सुब्रामण्यम, पंडित रघुनाथ सेठ, उस्ताद असद अली खाँ।

समस्याएं तब से हैं जब से विष्णुदिगम्बर पलुत्सकर तथाा भारखण्डे जी ने नोटेशन पद्धति को शुरू किया और रागों को लिपिबद्ध करके किताबें निकाली। तब से संगीत के प्राध्यापक तो बहुत मिल जाते हैं, लेकिन कलाकार बहुत ही कम। जो तालीम पुराने जमाने में सीना-बसीना हासिल होती थी वो किताब से नहीं मिल सकती, क्योंकि संगीत क्रियात्मक अंग का काम है। राग में हर एक स्वर का लगाव अलग-अलग होता है। स्वर तो सात ही हैं, लेकिन इन्हें लगाने का ढंग अलग होता है, जिससे राग बदल जाता है। यह संगीत-पद्धति गुरु के सामने बैठ कर ही सीखी जाती है। इस तरह की सिखलाई अब कम हो रही है।

रेडियो और टी.बी. से उभरते कलाकारों को बहुत ही लाभ प्राप्त होता है। देश के किसी भी कोने में बैठकर वह बहुत ही बड़े-बड़े कलाकारों को सुन सकते हैं और अपना ज्ञान बढ़ा सकते हैं। लेकिन नुक्सान हुआ है उन विद्यार्थियों को जो पैसा कमाने के चक्कर में पड़ जाते हैं और अपनी विद्या अधूरी ही छोड़ देते हैं। सुगम संगीत गाने या बजाने में कोई बुराई नहीं है लेकिन इसके लिए भी उचित प्रशिक्षण होता है जो इनको हासिल करना चाहिए। स्कूल कालेज में जो अध्यापकगण हैं वो भी पूर्णतया समर्पित और अपने विषय में पारंगत होने चाहिए। यह सत्य है कि संगीत कला हर एक के लिए नहीं होती। यदि एक विद्यालय में दस विद्यार्थी हैं तो उनमें एक आध विद्यार्थी ही उभरता है। जिसमें पूरी लगन और समर्पण का भाव होता है। जो विद्यार्थी क्रियात्मक संगीत में नहीं उभरते, उनको शास्त्रीय (Theory) संगीत की तरफ बढ़ जाना चाहिए। उनमें से कुछ अच्छे श्रोता भी बन सकते हैं। यदि हम कुछ कर सकते हैं तो हमें शास्त्रीय-संगीत के छोटे-छोटे पाठ्यक्रम चलाने चाहिए। इन पाठ्यक्रमों में शास्त्रीय पक्ष का भरपूर प्रयोग होना चाहिए।

जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी भी शास्त्रीय संगीत को बढ़ावा देने हेतु कार्यरत है। दूसरे राज्यों के बहुत से गुणी (शास्त्रीय संगीत के) कलाकारों को बुलाकर गायन, वादन एवं नृत्य, तीनों पक्षों में प्रदर्शन और वाद-संवाद के कार्यक्रम भी करवाए जाते हैं जिससे कि हमारे अपने राज्य के कलाकारों एवं संगीत विद्यार्थियों को प्रोत्साहन मिल सके।

यहां तक कि शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार हेतु जे. एण्ड. के. कल्चरल अकैडमी के अंतर्गत दो विद्यालय :-'इंस्टीचूट ऑफ म्यूज़िक एण्ड फाइन आर्टस, पुंछ हाऊस जम्मू और इंस्टीचूट ऑफ म्यूज़िक एण्ड फाइन आर्टस, राजबाग श्रीनगर, काम कर रहे हैं जिनमें गायन, वादन, नृत्य, तबला, वायलिन आदि विषयों की शिक्षा दी जा रही है। इन विद्यालयों से बहुत से विद्यार्थी उत्तीर्ण हो कर स्कूलों, कॉलेजों, रेडियो, टी. वी. आदि अदारों में आगे इस विद्या का प्रचार भी कर रहे हैं। शास्त्रीय संगीत के प्रोत्साहन के लिए जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी हर वर्ष "ऑन स्पॉट म्यूज़िक कॉम्पिटीशन" का आयोजन भी करती है जिसमें जीतने वाले प्रतियोगियों को पुरस्कृत भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त गर्मियों की एक महीने की कार्यशाला के अंतर्गत शास्त्रीय नृत्य को भी बढ़ावा मिल रहा है। अब तो शास्त्रीय गायन और वादन को भी इसमें शामिल करने के प्रयास चल रहे हैं।

इसके इलावा जम्मू-विश्वविद्यालय भी प्रत्येक वर्ष अपनी "**डिसप्ले योर टेलेंट**" प्रतियोगिता के माध्यम से **शास्त्रीय संगीत** के उत्थान में अपनी भूमिका निभा रहा है।

शिक्षा विभाग की ओर से भी शास्त्रीय संगीत के उत्थान हेतु एक कदम बढ़ाया गया है। आज इसे स्कूल, कॉलेजों में भी एक (मुख्य) विषय के रूप में सम्मिलित कर लिया गया है। यहां तक कि अब संगीत विद्यार्थियों को एम. म्यूज़ करने के लिए दूसरे राज्यों में जाने की आवश्यकता भी नहीं रही। परंतु दुःख की बात तो यह है कि एम. ए. म्यूज़िक कोर्स सिर्फ महिला-विद्यालयों में ही शुरू किये गए हैं जिनसे सिर्फ महिला-विद्यार्थियों को ही लाभ हुआ लेकिन पुरुष विद्यार्थी इससे वंचित रह गए।

यदि शिक्षा-विभाग इसकी ओर ध्यान दे तो इस समस्या का समाधान हो सकता है।

जम्मू में शास्त्रीय संगीत की परंपरा को कायम रखने के लिए एक महत्त्वपूर्ण योगदान हमारे कुछ निजी विद्यालयों का भी है जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :-

स्व. श्री जे. आर. शर्मा जी द्वारा चलाया गया विद्यालय 'सरस्वती संगीत कला मंदिर' जो इनकी मृत्यु के बाद इनके सुपुत्र श्री रवि शर्मा जी चला रहे हैं।

पं. दुर्गा दत्त जी के नाम से चल रहे विद्यालय 'दुर्गा संगीत अकैडमी' में आजकल प्रो. वेद प्रकाश शर्मा बच्चों को शास्त्रीय संगीत का प्रशिक्षण दे रहे हैं।

''शारदा संगीत विद्यालय'' को श्री पी. एन. रैणा जी चला रहे हैं तथा इसकी एक शाखा गांधीनगर में श्रीमती सत्यभामा जी द्वारा चलाई जा रही है।

'नूतन संगीत विद्यालय' जिसे श्री आर. ई. दसक्कर जी द्वारा प्रारम्भ किया गया था। उनके शिष्य चला रहे हैं।

श्री जगन्नाथ शिवपुरी जी द्वारा चलाया गया विद्यालय, आजकल श्री रविभान चला रहे हैं। इन विद्यालयों के इलावा भी जम्मू में ऐसे बहुत से प्रौढ़ कलाकार हैं जिन्होंने शास्त्रीय संगीत को आज तक जीवित रखा है तथा ये लोग अपने-अपने स्तर पर विद्यार्थियों को शास्त्रीय संगीत का प्रशिक्षण दे एक लक्ष्य को पाने में प्रयासरत हैं। इनमें से :-श्री वाचस्पति शर्मा (सितार), श्री ओ. एन. रैणा (सितार), श्री बी. एस. बाली (कंठ-संगीत), श्री टी. के. जलालि (कंठ-संगीत), श्रीमती ऊषा भगाति (सितार), श्रीमती सविता बख्शी (सितार), श्रीमती पद्मनी टिक्कू (सितार), श्रीमती वीणा गुप्ता (कंठ-संगीत), श्री आशुतोष शर्मा, श्री भूषण कौल, श्रीमती अभिनय क्यूम, श्रीमती सुनफा कोल, (कंठ-संगीत) आदि अपने-अपने स्तर पर शिष्यों को तैयार कर रहे हैं।

वाद्य और कण्ठय-संगीत के अतिरिक्त जम्मू में शास्त्रीय नृत्य को भी काफी बढ़ावा मिल रहा है जिसमें श्री नारायण जी और श्री वी. एम. कोह्ली मुख्य भूमिका निभा रहे हैं। तबला के क्षेत्र में स्व. मास्टर लक्ष्मण दास जी का नाम मुख्य रूप से उल्लेखनीय है जो अपने शिष्यों को निशुल्क शिक्षा देते थे। इनके इलावा श्री के. एल. वर्मा, श्री विचित्र सिंह, श्री राजेन्द्र रैणा, सैमी मसीह, जोन मसीह, श्री पुशिपंदर आदि नाम प्रसिद्ध हैं।

हम यूं कह सकते हैं कि आज के समय में शास्त्रीय संगीत के प्रति जनरुचि काफी ब्रढ़ गई है। आज लगभग हर घर में माता-पिता अपने बच्चों को इसकी ओर प्रोत्साहित कर रहे हैं। एक समय यह भी था जब लोग अपने बच्चों को संगीत सिखाने में हिचकिचाते थे परंतु आज वह दौर जा चुका है। अतः जम्मू में संगीत का भविष्य उज्जवल नज़र आ रहा है।

ooo

उर्वशी-परम्परा और उसकी भाषिक संरचना

❒ डॉ. मज़हर अहमद ख़ान

30 दिसम्बर, 1908 को बिहार के मुंगेर ज़िले के सिमरिया घाट गाँव में अनल कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म हुआ तथा 24 अप्रैल, 1974 को शरीर का त्याग किया। उनमें काव्यांकुर बचपन में ही विकसित होने लगे थे। विद्यार्थी जीवन में ही उनकी दो काव्य कृतियाँ- बारदोली विजय (1928) और प्राणभंग (1930) प्रकाशित हो चुकी थीं। कलांतर में यही प्रतिभा परवान चढ़ी और 'दिनकर' राष्ट्रकवि के रूप में प्रसिद्ध हुए। काव्य प्रकाशकार मम्मट ने काव्य हेतु को स्पष्ट करते हुए कहा है कि वही व्यक्ति कवि बन सकता है जिसमें कवि प्रतिभा है, निपुणता है, लोक-जीवन के अनुभव, शास्त्रों का अनुशीलन और काव्य आदि का विवेचन करने की शक्ति है, जो निरन्तर काव्य रचना में अभ्यासरत रहता है, अन्य कवि या काव्य कृतियों का अनुसरण करने का प्रयास करता है। दिनकर के विषय में यह वाक्य सत्य सिद्ध होते हैं। उन्होंने अपने जीवनकाल में जिन काव्य-कृतियों की रचना की उनमें रेणुका, हुंकार, रसवन्ती, द्वन्द्वगीत, सामधेनी, धूप-छाँह, बापू, इतिहास के आँसू, धूप और कुआं, रेती के फूल, नील कुसुम, उजली आग, नीम के पत्ते, दिल्ली, सीपी और शंख (अनूदित कविता संग्रह), नये सुभाषित (सूक्ति संग्रह) प्रसिद्ध हैं।

सारस्वत कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के तीन प्रबन्धकाव्य-कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी और उर्वशी समसामयिक विचारधारा के साथ-साथ उनके जीवन-दर्शन को प्रस्तुत करते हैं। सन् 1943 में लिखा गया प्रबन्ध काव्य 'कुरुक्षेत्र' में महाभारतकालीन युधिष्ठर और भीष्म पितामह के संवादों को आधार बना कर युद्ध और हिंसा-अहिंसा, धर्म-अधर्म, नीति-अनीति की समस्या पर युगान्तकारी विचार प्रस्तुत किए गए हैं। 'रश्मिरथी' (1957) प्रबन्ध काव्य में महाभारत के पराक्रमी कर्ण और कुन्ती का जीवन-चरित्र है। इसमें कर्ण को जहाँ एक गुरुभक्त, सत्यवादी, पतितों का उद्धारक, धनुर्धर, दानशील, दयाशील, परमत्यागी आदि गुणों से शोभित किया गया है वहीं कुन्ती को अधिक ममतामयी, वात्सल्यमयी उदारहृदया के रूप में दर्शाया गया है। उनका प्रबन्ध काव्य उर्वशी (1961) एक विचार प्रधान रचना है। इसमें नर-नारी की प्रेम-समस्या पर गम्भीरता और सूक्ष्मता से विचार किया गया है। 'उर्वशी' का शाब्दिक अर्थ है-हृदय-

*मोहल्ला; साज़गरीपोरा (हवल) श्रीनगर-190011 (कश्मीर)
सम्प्रति-Assistant Professor, Hindi Department, University of Kashmir, Srinagar—190011 (Kmr.)

निवासनी। यह प्रबन्ध काव्य केशवदास की 'रामचंद्रिका' की भाँति नाटकीय शैली में लिखा गया है। सन् 1973 में 'उर्वशी' की रचना के लिए दिनकर को भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया। सर्वप्रथम उर्वशी-पुरुरवा आख्यान हमें 'ऋग्वेद' में मिलता है-पुरूरवा! 'पुनरस्तं परेहि, दुरापना वात इवाहमस्मि।' (हे पुरुरवा! तुम अपने घर लौट जाओ। मैं वायु के समान दुष्प्राप्य हूँ। 'पद्मपुराण' में उर्वशी को काम-उरु उद्भुत बताया गया है। 'महाभारत' में भी उर्वशी का वर्णन है जहाँ वह कौन्तेय पर विमोहित हुई थी।

दिनकर की 'उर्वशी' प्रागैतिहासिक घटनाओं पर आधारित काव्य रचना है। जो कि कालिदास के नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' से अत्यधिक प्रभावित है। कालिदास ने जिस प्रकार रम्भा के माध्यम से उर्वशी के सौंदर्य का वर्णन किया है उसी प्रकार दिनकर ने सहजन्या द्वारा उर्वशी के रूप-सौंदर्य को अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने उर्वशी को कौमुदी, इन्द्र के मन की ललित कामना आदि जैसे प्रयोग कालिदास से ग्रहण किए हैं। महाकवि कालिदास ने उर्वशी को गणिका, प्रवंचिका, व्यापिनी आदि के रूप में चित्रित किया है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' के पश्चात् उर्वशी पर आधारित काव्य-ग्रन्थों की रचना की एक लम्बी परम्परा देखने को मिलती है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने उर्वशी को नन्दवासिनी, अकुंठिता, कांतिमयी और यौवना के रूप में चित्रित किया है। वह केवल सौंदर्य-राशि है और मानवी सम्बन्धों का अस्तित्व उसके व्यक्तित्व में नहीं है। उसका सौंदर्य स्वयं-भू है। कवीन्द्र की उर्वशी सौंदर्य की विराट राशि है। वह सम्पूर्ण विश्व की शाश्वत प्रिया है, जिससे केवल मानसिक धरातल पर प्रेम किया जा सकता है। जिसे दिनकर ने यत्र-तत्र स्वीकार किया है। जयशंकर प्रसाद की 'उर्वशी' एक लघु रचना है। प्रसाद की 'उर्वशी' में पुरुरवा को उर्वशी की शर्तानुसार नंगे बदन देख कर छोड़ कर चले जाने पर पुरुरवा की तड़प का वर्णन है। लेकिन 'कामायनी' में वर्णित उर्वशी की तुलना निश्चित रूप से की जा सकती है। इस तथ्य को स्वयं दिनकर ने 'उर्वशी' की भूमिका में स्पष्ट करते हुए लिखा है- ''सृष्टि विकास की जिस प्रक्रिया के कर्त्तव्य पक्ष का प्रतीक मनु और इड़ा का आख्यान है, उसी प्रक्रिया का भावना-पक्ष पुरुरवा और उर्वशी की कथा में कहा गया है।''

जानकी वल्लभ शास्त्री ने 'उर्वशी' शीर्षक से गीति-नाट्य की रचना की है, जिसकी आधारशिला कालिदास के नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' पर ही आधारित है। इस गीति-नाट्य की रचना करने का उद्देश्य लौकिक कला प्रेम और अलौकिक दैहिक प्रेम के रूप को प्रस्तुत करना रहा है। दिनकर और जानकी वल्लभ की 'उर्वशी' में घटना प्रसंग, चरित्र-निरूपण तथा प्रणय वर्णन में समानता देखने को मिलती है। रामावतार 'अरुण' ने अपने महाकाव्य 'महाभारती' के दूसरे सर्ग में उर्वशी का उल्लेख किया है। उन्होंने दिनकर से पृथक उर्वशी के चरित्र में परिवर्तन करके उसे एक संवेदनशील नारी के रूप में चत्रित किया है। डॉ. अवधेश्वर द्वारा रचित 'उर्वशी' नाटक मानवीय संस्कृति के विकास को प्रस्तुत करता है। यहाँ उर्वशी स्वर्ग के मुक्त संस्कारों को धरती के बंधनों में बांधना नहीं चाहती। उनकी उर्वशी में पौरुष का तेज है जो सर्वत्र चुनौती

के रूप में प्रकट हुआ है। इस प्रकार अनेक रचनाकारों ने कालिदास की 'उर्वशी' से प्रेरणा ग्रहण कर उसे अपने-अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। जिसके कारण उर्वशी के व्यक्तित्व को एक विस्तार प्राप्त हुआ और मानव मन की शाश्वत भावनाओं का प्रतीक बन कर सामने आई।

'उर्वशी' की भावात्मकता और दार्शनिकता की अपेक्षा उसकी भाषिक संरचना और शिल्प-विधान अधिक प्रभावशाली है। 'चक्रवाल' की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि विज्ञान और कविता में जो भेद है, वह दोनों के भाषा प्रयोग में स्पष्ट हो जाता है। वैज्ञानिक और कवि, शब्द तो प्राय: एक ही कोश से लेते हैं लेकिन शब्दों को वाक्यों के भीतर बिठाने में दोनों के तरीकों में भेद पड़ जाता है। कवि शब्दों को इस उद्देश्य से बिठाता है कि वे अपनी ध्वनि को झंकृत कर सकें, एक नहीं अनेक अर्थों का संकेत दे सकें , उनसे प्रभावोत्पादकता टपके और वे पाठकों के भीतर किंचित आवेश भी उत्पन्न कर सकें। किन्तु वैज्ञानिक का उद्देश्य इसके सर्वथा विपरीत होता है। किसी भी वैज्ञानिक का विश्वास हम इसलिए नहीं करते कि वह प्रभावोत्पादक ढंग से बोलता है बल्कि वह यदि प्रभाव जमाने को बोलने लगे तो हमें उस पर संदेह होने लगेगा। वैज्ञानिक एक शब्द से एक ही अर्थ लेना चाहता है और न तो वह स्वयं आवेश में आता है, न अपने शब्दों के द्वारा दूसरे को आविष्ट बनाना चाहता है।[2] 'उर्वशी' में जहां काव्यशास्त्र के नियमों का रुढ़िबद्ध पालन किया गया है वहीं पाश्चात्य प्रभाव भी स्वच्छन्दता के कारण रूढ़िमुक्त दिखाई देता है। कविवर दिनकर ने आचार्य कुन्तक की मान्यता का उल्लेख करते हुए कहा है-'कविता को कविता होने के लिए एक शैली और भाव के बीच परस्पर स्पर्द्धा, समभाव होना चाहिए, अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच संतुलन चाहिए, विचार और भाषा में से किसी को भी एक-दूसरे के पीछे नहीं रहना चाहिए।'[3] साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने वियोग की दस दशाओं[4] का उल्लेख किया है। उनमें से दिनकर ने मरणावस्था को छोड़ कर अन्य समस्त अवस्थाओं का क्रमश: वर्णन अत्यन्त मार्मिक रूप से किया है। उर्वशी के गुण-कथन का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

दर्पण, जिसमें प्रकृति रूप अपना देखा करती है,
वह सौंदर्य कला जिसका सपना देखा करती है।
नहीं, उर्वशी नारि नहीं, आभा है निखिल भुवन की,
रूप नहीं, निष्कलुष कल्पना है, स्रष्टा के मन की।
(उर्वशी, पृ. 24)

तथा पुरुरवा के वियोग वर्णन का चित्रांकन देखने योग्य है:-

नक्षत्रों के बीच प्राण के नभ में बोने वाली।
ओ रसमयी वेदनाओं में मुझे डुबोने वाली
स्वर्गलोक की सुधे ! अरी, ओ, आभा नंद वन की
किस प्रकार तुझ तक पहुँचाऊ पीड़ा में निज मन की?

स्यात् अभी तप ही अपूर्ण है, न तो भेद अम्बर को
छुआ नहीं क्यों मेरी आहों ने तेरे अन्तर को?
(उर्वशी, पृ. 39)

बिम्बात्मकता 'उर्वशी' की विशेषता है। इसमें प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष बिम्बयोजना देखने को मिलती है। प्रकृति चित्रण में, नर-नारी के सौंदर्य-निरूपण में और अमूर्त का मूर्तिकरण करने में यह देखने योग्य उदाहरण है-

दमक रही कर्पूर-धूलि दिग्वधुओं के आनन पर,
रजनी के अंगों पर कोई चंदन लेप रहा है।
और गगन पर ज्यों असंख्य आग्नेय जीव बैठे हैं,
लगते हैं धुंधले अरण्य में हीरों के कूपों-से।
(उर्वशी, पृ. 66)

अमूर्त का मूर्तिकरण भी देखिए:-

कामनाएं वार्तिका-सी जल रही हैं।
(उर्वशी, पृ 51)

कविवर दिनकर ने प्रकृति को चेतन सत्ता के रूप में वर्णित कर उसे मानवीकृत रूप प्रदान किया है। यथा-

शिखरों पर हिम राशि और नीचे झरनों का पानी
बीचो-बीच प्रकृति सोयी है ओढ़ निचोली धानी।
(उर्वशी; पृ. 39)

तथा प्रकृति के रहस्यमयी रूप के माध्यम से उर्वशी के लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक रूप में बड़ी खूबी से प्रस्तुत क़िया गया है-

समतामयी उदार शीतलांचल अब फैलाती है,
जाते भूल नृपति मुकुटों को, बन्दी निज कड़ियों का
....
....
नक्षत्रों में खचित, कूल-कीलित झालरें विभा की,
गूंथे हुए चिकुट में सुरभित दाम श्वेत फूलों के?
(उर्वशी; पृः 68)

'उर्वशी' के दार्शनिक पक्ष में प्रेम और ईश्वर, जैव और आत्म धरातल को एकाकार करने का प्रयत्न किया गया है-

झुके हुए हम धनुष मात्र हैं, तनी हुई ज्या पर से,
किसी ओर की इच्छाओं के बाण चला करते हैं।
(उर्वशी; पृ. 46)

'उर्वशी' में अलंकारों-श्लेष, रूपक, दृष्टांत, स्मरण आदि की मनोहारी छटा प्रभावित किए बिना नहीं रहती। यथा-

बाला रहती बंधी मृदुल धागों से शिरिष-सुमन के,
किन्तु अंक में तनय, पयस के आते ही अंचल में,
वही शिरिष के तार रेशमी कड़ियाँ बन जाती हैं।
(उर्वशी; पृ. 121)

तथा-

और हाय! वह एक निर्झरिणी पिघले हुए सुकृत-सी
तीर-द्रुमों की छाया में कितनी भोली लगती थी।
(उर्वशी; पृ. 126)

इस प्रकार दिनकर के गीति-नाट्य 'उर्वशी' में भावना के विविध रंगों का समावेश देखने को मिलता है। इसकी भाषा अत्यन्त प्रौढ़ है। इसका काव्य-सौंदर्य इसकी सफलता का उद्घोषक है। इसमें भाव और कला का सुन्दर संगम देखा जा सकता है।

ooo

संदर्भः-

1. उर्वशी (भूमिका से)- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ-2 (ख)
2. चक्रवाल-रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ-66-67 (सन् 1956)
3. मिट्टी की ओर-रामधारी सिंह 'दिनकर', पृष्ठ-185
4. अभिलाषश्चिन्ता स्मृति गुण कथनोद्वेग सम्प्रलापाश्च,
   उन्मादोऽथ व्याधिर्जड़ता मृतिरित दशात्र काम दशाः-1

   साहित्य दर्पण-विश्वनाथ, परिच्छेद-3, कारिका-190.

जम्मू एवं कश्मीर का राज्यपक्षी कृष्णग्रीवा सारस

❑ डॉ. परशुराम शुक्ल

कृष्णग्रीवा सारस एक संकटग्रस्त पक्षी है इसकी संख्या साइबेरिया के सारस के समान बड़ी तेज़ी से कम हो रही है। अत: इसे विश्व स्तर पर एक संकटग्रस्त पक्षी घोषित किया गया है।

कृष्णग्रीवा सारस भारत में एक बहुत छोटे से क्षेत्र में पाया जाता है। यह भारत, लद्दाख और जम्मू-कश्मीर के छोटे से पर्वतीय भाग में ही देखने को मिलता है। भारत के साथ ही यह भूटान, तिब्बत और साईबेरिया में भी मिलता है। कृष्णग्रीवा सारस हिमालय के पर्वतीय भागों में उँचाई पर बहने वाली नदियों के किनारे, दलदल वाले भागों तथा इसी तरह के अन्य जलकुण्डों के पास एवं पानी से भरे चावल के खेतों में जोड़े में अथवा छोटे-छोटे समूहों में मिलता है। भूटान में इसके कुछ बड़े समूह भी देखने को मिल जाते हैं। यहाँ पर यह 72 तक के समूहों में देखा गया है। भूटान के बौद्ध मठों में लोग इसके प्रति बड़ी श्रद्धा रखते हैं और इसे पालते हैं। अत: यहाँ पर बहुत बड़ी संख्या में कृष्णग्रीवा सारस देखने को मिल जाते हैं।

कृष्णग्रीवा सारस अपने मनोहारी नृत्य के लिए विख़्यात है। जिस प्रकार राजहंस को आकाश में समूह में उड़ते हुए देखना बड़ा मनोहारी लगता है उसी प्रकार कृष्णग्रीवा सारस का समूह नृत्य एक अलौकिक सौन्दर्य का दृश्य उपस्थित कर देता है। यह वर्ष-भर समूह नृत्य करता है। नृत्य के समय यह कभी-कभी ऊँचाई पर उड़ता है और बहुत शोर मचाता है। इसकी आवाज़ सारस क्रौंच से भी अधिक तेज होती है। तथा तुरही की आवाज़ से बहुत मिलती-जुलती है। कृष्णग्रीवा सारस की आवाज़ इतनी तेज होती है कि एक किलोमीटर की ऊँचाई पर उड़ते हुए सारस के द्वारा निकाली गई आवाज़ ज़मीन पर साफ सुनाई देती है।

कृष्णग्रीवा सारस पूरे वर्ष-भर एक विशेष प्रकार का समूह नृत्य करता है। इस नृत्य में समूह के नर-मादा और इनके बच्चे सभी भाग लेते हैं। इस नृत्य में ये अपने पंख फैला कर एक-दूसरे के चारों ओर घूमते हैं। कभी-कभी यह नृत्य करते-करते हवा में उछलते भी हैं।

---

* *100, पंचशील नगर, सिविल लाइन्स, दतिया (म. प्र.) 475661, (07522) 36292*

इसके साथ ही .यह पंखों को फड़फड़ाते हुए 3-4 मीटर की ऊँचाई तक पहुँच जाते हैं और फिर धीरे-धीरे ज़मीन पर उतर आते हैं। इस समय इन्हें देखने से ऐसा लगता है कि मानो कोई शानदार नृत्य नाटिका चल रही हो। कभी-कभी यह नृत्य के मध्य लकड़ी-पत्थर अथवा ऐसी ही कोई वस्तु अपनी चोंच से उठाकर हवा में उछालते हैं और उसे ज़मीन पर गिरने से पहले पुन: चोंच से पकड़ते हैं। इनके नृत्य के मध्य, नटों के समान इस प्रकार के और भी करतब देखे जा सकते हैं। कृष्णग्रीवा सारस हमेशा समूह नृत्य नहीं करते कभी-कभी इनका केवल एक जोड़ा ही नृत्य करता है।

कृष्णग्रीवा सारस की शारीरिक संरचना अन्य सारस पक्षियों के समान होती है। यह एक बड़ा सारस है। इसके पैरों की उंगलियों से लेकर चोंच के बाहरी सिरे तक उँचाई 140 सैंटीमीटर से 150 सैंटीमीटर हो सकती है। भारत में पाये जाने वाले पक्षियों में केवल सारस क्रौंच इससे बड़ा होता है। यह धूसर और काले रंग का सारस है। इसके शरीर का अधिकांश भाग धूसर रंग का होता है और इसकी गर्दन लम्बी होती है और इसका रंग काला होता है। इसके सिर और पूँछ के ऊपर लटकने वाले पंख भी काले रंग के होते हैं। किन्तु सिर के ऊपर वाला भाग लाल होता है। इसके शरीर के पंख और उड़ने वाले पंख हल्के धूसर रंग के होते हैं तथा उड़ने वाले पंखों के सिरों का रंग काला होता है। कृष्णग्रीवा सारस के पैर लम्बे होते हैं और इनका रंग भी कालापन लिए होता है।

कृष्णग्रीवा इस की चोंच लम्बी, पतली और लाली लिये हुए हल्के धूसर रंग की होती है। इसकी दोनों आँखों के पीछे वाले भाग पर सफेद रंग का एक-एक धब्बा होता जो इसकी गर्दन के पास तक चला जाता है। नर और मादा की बाह्य शारीरिक सरंचना लगभग समान होती है और दोनों देखने में एक जैसे लगते हैं। किन्तु इनमें मादा नर से कुछ छोटी होती है। अत: दोनों को अलग-अलग सरलता से पहचाना जा सकता है।

कृष्णग्रीवा सारस की शारीरिक संरचना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी वायु नलिका (विन्ड पाइप) लगभग 150 सैन्टीमीटर लम्बी होती है। इस वायु नलिका का आधा भाग इसके सीने की हड्डियों के मध्य लिपटा हुआ (क्वायल्ड) कहता है। इस वायुनलिका के सहयोग से यह इतनी तेज़ आवाज़ निकाल सकता है, जिसे दो किलोमीटर दूर तक सुना जा सकता है। इसी प्रकार की वायु नलिका (विन्ड पाइप) सारस के भी होता है। यह सारस कर्र...........क्रा...........क्रू.........की आवाज़ निकालता है। इसकी आवाज़ तेज़ होने के साथ ही साथ बड़ी कर्कश होती है।

इस का भोजन और भोजन करने का ढंग अन्य सारस पक्षियों के समान होता है। किन्तु अन्य सारस पक्षियों की तुलना में यह शाकाहारी है। इसका प्रमुख भोजन अनाज के दाने और विभिन्न प्रकार के कंदमूल हैं। यह गिरे हुए अनाज के दाने, छोटे पौधे, पत्तियां, विभिन्न प्रकार के फल-फूल, जड़ें और फसलें बड़े स्वाद से खाता है। इसके साथ ही इसे मेंढक जैसे उभयचर, छिपकली जैसे सरीसृप, चूहे जैसे कुतरने वाले जीव और छोटे- छोटे पक्षियों का शिकार करते हुए भी देखा गया है।

कृष्णग्रीवा सारस प्रात: काल सूर्योदय के साथ ही उड़ते हुए भोजन वाले क्षेत्र में पहुँच जाता है और भोजन वाले क्षेत्र का एक चक्कर लगाता है। इसके बाद यह जमीन पर उतरता है और दोपहर होने तक भोजन करता है। दोपहर की तेज़ गर्मी में यह भोजन नहीं करता और निकट के किसी वृक्ष पर छाया में आराम कर लेता है। सूर्य की गर्मी कम होने पर यह पुन: भोजन हेतु जमीन पर आ जाता है और अन्धेरा होने के पूर्व यह अपने बसेरे वाले स्थान पर पहुँच जाता है और रात-भर सोता है अथवा विश्राम करता है।

सामान्य सारस, साइबेरिया का सारस और करकरा भारत में सर्दियों के मौसम में भारत आते हैं। किन्तु भारत में प्रजनन नहीं करते। कृष्णग्रीवा सारस भारत में प्रजनन करता है। यद्यपि भारत में इसकी संख्या बहुत कम है और यह बहुत छोटे से क्षेत्र में प्रजनन करता है। फिर भी भारत में प्रजनन करने के कारण यह एक महत्त्वपूर्ण भारतीय सारस बन गया है। कृष्णग्रीवा सारस सर्दियाँ भूटान में व्यतीत करता है। हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में कुछ स्थानों पर इसके प्रजनन क्षेत्र हैं। भारत में यह लद्दाख में मुख्य रूप से प्रजनन करता है। अरुणाचल प्रदेश में भी इसके प्रजनन क्षेत्र हो सकते हैं किन्तु इस सम्बन्ध में अधिकारपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

कृष्णग्रीवा सारस तेज़ बहने वाली पहाड़ी नदियों के पास के नमी और दलदल वाले स्थानों तथा ताजे जोते पानी से भरे चावल के खेतों में अपना घोंसला बनाता है। कभी-कभी यह रुके हुए पानी पर भी घोंसला बना लेता है। इसे बड़ी नदियों के मध्य उभरे हुए टापू जैसे स्थानों पर घोंसला बनाना सबसे अच्छा लगता है। वास्तव में कृष्णग्रीवा सारस एक शर्मीला पक्षी है। यह ऐसे स्थानों पर घोंसला बनाना पसंद करता है जो निर्जन हों अथवा जहाँ मानव का आना-जाना बहुत कम हो। सामान्यतया, समागम काल में पक्षी बहुत शोर मचाते हैं। किन्तु अपनी इसी शर्मीली प्रकृति के कारण कृष्णग्रीवा सारस शान्त रहता है।

कृष्णग्रीवा सारस घास-फूस, पत्तियों और वृक्षों की सूखी टहनियों से अपना घोंसला तैयार करता है। इसका घोंसला बड़ा भद्दा होता है और देखने में कूड़े-कचरे के ढेर-सा लगता है। सामान्यता यह दलदल अथवा नमी वाले क्षेत्र में घोंसला बनाता है। किन्तु इन क्षेत्रों की बड़ी तेजी से कमी होती जा रही है। अत: कभी-कभी यह सूखे स्थानों पर भी घोंसला बना लेता है। शुष्क स्थानों पर बनाया गया इसका घोंसला ऊपर उठा हुआ न होकर समतल-सा होता है क्योंकि यहाँ पर घोंसले के भीतर कीचड़ की नमी अथवा पानी के पहुंचने की आशंका नहीं रहती है।

मादा कृष्णग्रीवा सारस प्रजनन काल में इसी घोंसले में 1 से 3 तक अण्डे दे सकती है। सामान्यता यह दो अण्डे देती है। यह पहले अपने घोंसले में एक अण्डा देती है और इसे सेना आरम्भ कर देती है। दो दिन बाद इसी घोंसले में यह दूसरा अण्डा देती है और इसे भी सेना आरम्भ कर देती है। मादा कृष्णग्रीवा सारस अपना पहला अण्डा देते ही उसे सेना आरम्भ कर देती है अत: पहला अण्डा दूसरे अण्डे से दो दिन पहले परिपक्व हो जाता है

और इससे बच्चा निकल आता है। इसका बच्चा बहुत तेज होता है और अण्डे से बाहर निकलते ही दौड़ने-भागने लगता है। यह अण्डे के बाहर निकलते ही नर सारस के संरक्षण में घोंसला छोड़ देता है। अब मादा पूरी तरह से अपना दूसरा अण्डा सेती है। दो दिन बाद दूसरा अण्डा भी परिपक्व होकर फूटता है और इससे दूसरा बच्चा बाहर निकल आता है। यह भी जन्म लेते ही घोंसला छोड़ देता है। किन्तु यह जन्म देने वाली मादा के संरक्षण में रहता है। इस प्रकार नर-मादा दोनों एक-एक बच्चे को सम्हालते हैं, उसकी सुरक्षा करते हैं और उसका पालन-पोषण करते हैं।

कृष्णग्रीवा सारस के बच्चे का विकास बड़ी तीव्र गति से होता है। विशेष रूप से इसके पैरों का विकास बड़ी तेजी से होता है। एक माह में ही इसके पैर पूर्ण रूप से विकसित हो जाते हैं। जबकि एक माह में इसके पंख बहुत ही कम निकल पाते हैं। 9-10 सप्ताह में इसके उड़ने वाले पंख निकल आते हैं और यह उड़ने योग्य हो जाता है। इसके अर्धवयस्क बच्चे का रंग जंग जैसा कत्थई होता है। धीरे-धीरे इसके शरीर के रंगों में परिवर्तन होता है और वयस्क होते-होते यह जन्म देने वाले नर-मादा के समान रूप- रंग वाला हो जाता है। इस की आयु बहुत लम्बी होती है तथा यह लगभग 50 वर्ष की आयु तक जीवित रहता है।

सारस एक शानदार पक्षी है। यह प्रकृति का अनुपम उपहार है। सारस खेती को हानि पहुँचाने वाले कीड़े-मकोड़े खाकर फसलों की सुरक्षा करता है। अत: इसे मानव का मित्र पक्षी कहा जा सकता है। किन्तु पर्यावरण प्रदूषण, विशेष रूप से जल प्रदूषण, खेती के स्वरूप में परिवर्तन, बाँधों के निर्माण, संरक्षित भूमि पर मानव का हस्तक्षेप आदि अनेक कारणों से इसकी संख्या में बड़ी तेजी से कमी आयी है तथा साइबेरिया का सारस और सारस क्रौंच जैसी इसकी अनेक जातियाँ विलुप्ति के कगार पर पहुंच गयी हैं। सारस की संख्या में कमी का एक बहुत बड़ा कारण इसके निवास स्थानों में कमी के साथ-ही-साथ इसका शिकार भी है। जापान में किसी समय मंचूरिया के सारस (मंचूरियन क्रेन) को विशेष संरक्षण प्राप्त था। इसका शिकार केवल राजा और राज परिवार के लोग ही कर सकते थे। गौतम बुद्ध के अहिंसा के प्रभाव के कारण ही लोग इसका शिकार नहीं करते थे। औद्योगीकरण, नगरीकरण और आधुनिक भौतिकवादी विचारधारा के विकास के बाद इसका इतना अधिक शिकार किया गया कि यह विलुप्ति के कगार पर पहुंच गया। उन्नीसवीं सदी के दूसरे दशक के अन्त तक मंचूरिया का सारस सम्पूर्ण जापान से समाप्त हो गया और केवल होकाइडो द्वीप पर ही शेष बचा। सन् 1924 में होकाइडो द्वीप पर इसकी संख्या केवल 20 शेष रह गयी। इसके बाद इसे बचाने के लिए विशेष प्रयास किये गए। परिणामस्वरूप इसकी संख्या बढ़ी और बढ़ कर 200 तक पहुंच गयी। इसकी वर्तमान स्थिति बहुत अच्छी तो नहीं है। किन्तु अब इसके विलुप्त होने की आशंका समाप्त हो गयी है।

सारस एक ओर फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीड़े-मकोड़ों को खाकर फसलों की सुरक्षा करता है तो दूसरी तरफ फसलों का अनाज खाकर किसानों को नुकसान पहुँचाता है। अत: बहुत से किसान इसे अपना शत्रु मानते हैं और अकसर मिलते ही इसे मार डालते हैं। वास्तव में सारस किसानों का मित्र है, शत्रु नहीं। यह फसलों को हानि कम पहुँचाता है और कीड़े-मकोड़े खाकर फसलों की सुरक्षा ही अधिक करता है।

कुछ देशों में सारस को एक पवित्र पक्षी माना जाता है तथा यहाँ इससे सम्बन्धित अनेक लोक कथाएँ भी प्रचलित हैं। जापान में सारस को लम्बी आयु का प्रतीक माना जाता है तथा यहाँ की लोक कथाओं में इसकी आयु एक हजार वर्ष मानी गयी है।

कलम टूट जाएगी

❑ कमल जीत चौधरी

तुम अपने पास
रखना चाहते हो
एक-एक खाली स्लेट
जिस पर तुम
सुविधानुसार खेंच सको
आड़ी-तिरछी लकीरें
लिख सको मनमाफिक
जिस पर से
मिटा सको
बिखर गई स्याही को
प्रश्नचिह्नों को-
जितना लिखना है
लिख लो
बहुत जल्दी
तुम्हारी कलम टूट जाएगी
हाथ से स्लेट छूट जाएगी।

०००

रंग और रंग

□ पृथ्वीनाथ मधुप

हो गया मरुथल
अब
वह डल!

ताक़ पर रख सभी ग़म
स्प्रिंग वाले
कढ़े आसन पर
गुदगुदी टेक से-
रीढ़ टिका
बतियाते तुम से
संवरे शिकारे की सैर
किसी राजतरंगिणी के
दीमकचटे पृष्ठ की
धूमिल इबारत हो गई!!

मरनासन्न उत्साह की
संजीवनी नहीं
अब
वह छप्पू.....छपाकू.....छप्पू!

दूध की फेन से भी श्वेत-
शॉल ओढ़े
चोटियों के ऊपर तिरता था-
'मंद-मंद-
मंथर-मंथर.....'
और/बादल-खंडों से खेलता
नीले दर्पण में हेरते!

प्रीतिभोज था नज़रों का
दूऽऽर सामने
सिन्दूर का घुलना!
अब-
अकेलाई में
दब रही पुतलियाँ
लुओं के/भट्ठी से निकले/लाल लौह हाथों
बनते जा रहे
उबलती बालू के
हिमालयी दूहों के नीचे
जो देख रही लगातार
घुलते सिन्दूर का
ताज़ा-ताज़ा लहू होते जाना!!

ooo

माँ से : फोन पर

..... उखाड़ फेंके
कुम्हलाये
बिरवे को मिली
मिट्टी/पानी/हवा/धूप!
तुम सरीखी ही
यह सूर्य-पुत्री भी
अम्मा जी! .....

ooo

---

* 58/7, 'शान्तासदन', सरस्वती विहार, तालाब तिल्लो, जम्मू-180002 मोबाईल : 9796483720

एक काव्य कथा

लड़की और पेड़

❐ महाराज कृष्ण संतोषी

बात पेड़ ने ही शुरू की
कहा - ऐ लड़की
तुम जब भी मेरी छांव में आकर
बैठ जाती हो तो सिर्फ रोती हो
आखिर तुम्हें कौन-सा ऐसा दुख है

लड़की ने सुना पर चुप रही
पतझड़ का मौसम
शुरू होने ही वाला था
कुछ ही दिनों में झर जाएंगे पेड़ों से पत्ते
और वे नंगे हो जाएंगे
फिर पूरी सर्दियों में ठिठुरते रहेंगे
अकेले बिल्कुल अकेले

लड़की ने सोचा
क्या पेड़ भी अपना दुख
किसी से कहते होंगे
शायद हां
पर किस से
हवा से
और किस से

हवा और पेड़ के रिश्ते पर
बहुत देर तक सोचती रही लड़की
फिर उसने अपने-आप से ही पूछा

113-ए/, लेन-4, आनन्द नगर बोहड़ी, तालाब तिल्लो, जम्मू-180002; मोबाईल : 9419020190

क्या पेड़ भी
किसी से प्यार करते होंगे

क्यों नहीं
पर किस से

लड़की ने ऊपर पेड़ की तरफ देखा
उस समय टहनियों पर
कुछ परिंदे बैठे हुए थे
जो किसी भी वक्त उड़ सकते थे

उस ने सोचा
शायद पेड़ इन परिंदों से ही
प्यार करते होंगे

लड़की के मन में
इच्छा जागी
अपने अगले जन्म में
वह ऐसा ही कोई परिंदा बनना चाहेगी

पेड़ ने
लड़की की इच्छा को
अपने भीतर महसूस किया
और वह हरा हो गया
बावजूद इसके कि दिन शुरू हो रहे थे पतझर के

अब पेड़ों पर दिखने लगे थे
पीले-पीले पत्ते
और हवा के मिजाज़ में भी
थोड़ा परिवर्तन आने लगा था

लड़की पेड़ की छांव में बैठी
बुन रही थी ज़िन्दगी का ताना-बाना

उसी वक़्त कुछ सूखे पत्ते गिर आए
उसके आस-पास

गिरते हुए पत्तों को देखकर
वह बहुत उदास हुई

उसे लगा
वह भी समय के पेड़ की
एक पत्ती है.....

वैसे पत्तों को लेकर
उसके मन में एक आदर भाव भी था
ये पत्ते चाहे कितनी भी ऊंचाई से गिर रहे हों
वे हमेशा अपनी ही जड़ों के आस-पास एकत्र होते है
फिर बारिश इन्हें गलाती है
और वे जड़ों की मिट्टी का
हिस्सा बन जाते हैं

पर हम इंसानों का मुकद्दर
कितना भिन्न है
हमें पता ही नहीं होता
कि हम बीमारी से मरेंगे
या हिंसा से
या दुर्घटना से
या उम्मीद टूटने से

वह बहुत देर तक
मृत्यु की अन्य सम्भावनाओं पर विचार करती रही

समय बीत रहा था
पल-पल
उसने एक लम्बी आह भरी
पेड़ ने उस की आह को
अनुभव किया भीतर तक
और दोहराया अपना प्रश्न
तुम्हें क्या दुख है ऐ लड़की!

उसी वक़्त परिंदों की
एक छोटी-सी टोली
लौट आई पृथ्वी पर
और बैठ गई पेड़ की नंगी शाखों पर
शाखें कुछ देर तक हिलती रहीं

लड़की को लगा
पेड़ और परिंदों का यह रिश्ता
सब रिश्तों से ऊंचा है

मनुष्य चाहे कितना भी ज्ञानी हो जाए
इस रिश्ते की ऊंचाई तक
पहुँच नहीं सकता

उस ने सोचा
कि हम इंसानों के पास
सिर्फ एक पिंजरा होता है
जिस की सलाखों के भीतर
हम अपनी दुनिया बसाते हैं

मौसम
बदल रहा था
लड़की का पेड़ के पास आना
तनिक कम हो गया था
अब जब कभी वह पेड़ के पास आती
तो घंटों सूखी घास पर लेटी रहती

शरद की धूप
उस की मनचाही धूप थी

इसी धूप में लेटे हुए
उसने एक दिन पेड़ से पूछा
क्या तुम परिंदों के लौटने का
इंतज़ार करते हो
और खामोश रहा पेड़।

ooo

पहचानः मृदु मुस्कान

❐ डॉ० निर्मल विनोद

दिव्य स्मित, शुभ-मांगलिक, वरदान है।
मुख-कमल, सौंदर्य का प्रतिमान है॥

ख़ूबसूरत आप-सी मुस्कान है।
आप जैसी आप की पहचान है॥

क्या ग़ज़ब की आपकी पहचान है।
आप की पहचान मृदु मुस्कान है॥

आपकी मोहक, मधुर मुस्कान है।
रूप होता और भी द्युतिमान है॥

सूर्य नयनों में जहाँ द्युतिमान है।
चन्द्र मुख से झांकता, छविमान है॥

मुस्कुराता रूप उज्जवल दीप-सा।
मन-हिरन ठिठका खड़ा, नादान है॥

ओट ले आँचल की मुस्काया करें।
पर्वतों का डोलता ईमान है॥

चाँद ने जबसे निहारा आप को,
उसके मुख पर आपकी मुस्कान है।

आपका चेहरा, कमल के फूल सा,
सामने हर पल रहे, अरमान है।

जिसने हँसते आपको देखा नहीं,
क्या भला जाने कि क्या भगवान है।

०००

असली सुख

□ डॉ० दिनेश चमोला 'शैलेश'

आकांक्षा और अपेक्षा की
बेल में से ही
फूटती हैं जड़ें दुखों की

दुख नहीं आता
कभी भी अनामंत्रित
हमीं बुलाते हैं उसे सादर
अपने आंगन में
पर फैलाने को

जितना डालते हैं उसे घास
उतना ही मंडराता-इठलाता है
वह उन्हीं के आस-पास
और उपेक्षा दुख की
बंद कर देता है
उसके सभी गवाक्षों को...
लेकिन इसे नहीं
कर सकता है आमजन
कोई विरला साधक ही
हो सकता है उसका सत्पात्र

हम सब तो
मछलियां हैं
दुख रूपी मछेरे के जाल में
फंस जाने के लिए बाध्य.....
सामर्थ्य व अद्‌भुत मेधा शक्ति चाहिए

---

* संपादक विकल्प भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून-248 005

उस मछेरे से दो-चार होने के लिए
भौतिक रूप में.....जो नहीं हो सकती सबमें

दुखों को
नकेला जा सकता है
यदि लगा सकें लगाम अपेक्षाओं पर.....
यही खोलती हैं द्वार वेदनाओं का
इच्छाओं का संकुचन जहां
दुखों को शून्य कर सकता है
वहीं इनका विस्तार
फैला देता है दुखों के क्षितिज को

एक प्रत्याशित
सुख के साथ
निशुल्क मिलते हैं कई-कई दुख
और एक वास्तविक सुख के लिए
छोड़ने पड़ सकते हैं
कई-कई अवास्तविक सुख

एक सुख होने की प्रतीति कराकर
दे सकता है गहरी पीड़ा
और एक पीड़ाओं के पार तक
लहरा सकता है
असली सुख की शाश्वत नदिया

०००

जीवन के धोबी पटरे पर

□ प्रो० फूलचंद मानव

जीवन के इस धोबी पटरे पर
मलते-मसलते मासूम कपड़ों की तरह
देह के साथ ही होने दिया खिलवाड़
और निचुड़ते-निचोड़ते भीगे कपड़ों के समान
गीलापन बहुत बाकी है
अभी रिश्तों में भी
पटकना, पछाड़ना, पोंछना, संवारना
या फिर खंगालना
जीवन सिर्फ यही तो नहीं
हम और हमारे संस्कार
पीढ़ियों से धोते सुखाते आ रहे हैं-
अरमान
अरमान, आसमान की तरह साफ हों
तभी लुभाते हैं, नहीं तो
बरसाती मौसम में
सूखते कपड़ों की तरह
सैलाब से भर जाते हैं
ज़िंदगी और जन्म का
यह सिलसिला हिला-अधहिला
मिला-मिलाया सामने आता है
मानों ख्यालों से ही दूर हो जाता है
मन पछताता है जब जब
अंधेरी कंदराओं की चीख
नहीं सुन पाता है
ज़िंदगी के ऐसे धोबी पटरे पर

०००

* 239, दशमेश एंक्लेव, ढकौली, जीरकपुर-140 108 (मोहाली) पंजाब

शहर के बच्चों के सपनों में

❒ देवांशु पाल

शहर के बच्चों के सपनों में
नकाबपोश होते हैं
चुरा ले जाते हैं सारे खिलौने

बम होता है
उड़ा देता है स्कूल की छतें

आग होती है
जला डालती है
डेक्स, ब्लेकबोर्ड, खेल का मैदान

चिड़ियों के कटे पंख होते हैं
सूखे पौधों के बगीचे होते हैं
स्कूली बस्ते के बोझ से लदे
अपने ही कंधों से रिसते
खून के दाग-धब्बे होते हैं

बच्चों के सपनों में
जार्ज बुश और लादेन का चेहरा होता है
सद्दाम का गुस्सा होता है
और गुजरात का दंगा होता है

बच्चों के सपनों में
नानी की कहानी नहीं होती
कहानी की राजकुमारी नहीं होती
सफेद घोड़ा नहीं होता
राक्षस नहीं होता
बच्चों कि खुली आँखों में
एक शहर होता है, भय और आंतक का
जहाँ उसका बचपन पलता है

०००

* गायत्री विहार, विनोबा नगर, बिलासपुर-495001 (छ.ग.), मोबाईल : 09907126350

महानगर

❒ संजीव भसीन

महानगर
अंतहीन डगर
इस छोर से
उस छोर तक
भोर से साँझ तक
साँझ से भोर तक
चलता है सफ़र

शामो-सहर
मीलों भागता
जवां ख्वाबों का
जहान है यह महानगर
उड़ते परिन्दों का
आसमान है यह महानगर
किरणें फूटते ही यहाँ
लाखों स्वप्न जागते हैं
कल्पनाओं के घोड़े
आकाश पर भागते हैं

पर इस चकाचौंध में भी-
बहुत तन्हा है आदमी
ऊँचा उठकर भी
बहुत नन्हा है आदमी

धुंधला है सूरज
हवा नहीं है कुँवारी
सांसें घुटती हैं तो
सोच उमसाती है
ज़िन्दगी बिखरकर
कतरा-कतरा हो जाती है

भागती ज़िन्दगी की
टूटन और थकन
दिलो-दिमाग पर हावी
झुंझलाहट और कुढ़न
मशीनी आदमी
घबराकर चीखता है
पर कंक्रीट के जंगल में
स्वर खो जाता है
आवाज़ लौटकर
नहीं सुनाई देती
जमते अहसासों का मारा आदमी
गूंगा और बहरा हो जाता है

धुंधला है हर आइना
आइने में
प्रतिबिम्ब मुखौटों का
इन्सानों के समन्दर में
चेहरा ग़ुम हो गया है
उमसाया हुआ आदमी
केंचुली उतारकर
रोज बिल से

* 2/3 गुढ़ा, बक्शी नगर, जम्मू। मोबाईल : 9419304201

बाहर निकल आता है
सारा दिन भटकता है
चेहरा ढूंढता है
थककर खाली हाथ
बिल में घुस जाता है

जेट स्पीड़ से भागता
कहने को तो सुपर फ़ास्ट है
यह महानगर
पर फाइवस्टार
और फुटपाथ कल्चर का
कन्ट्रास्ट है यह महानगर

भागते लोगों का
फ्यूचर तो न जाने
क्या होगा
पर टूटती ज़िन्दगी का
प्रेजेंट और पास्ट है
यह महानगर

कभी धूप तो कभी
छाँव महानगर
भटकते कदमों की
छाँव महानगर
एक समन्दर है
जिसमें मिलती है
हज़ारों नदियाँ

ooo

* 2698, सैक्टर 40-सी, चण्डीगढ़-160036

बूढ़ा पीपल

□ डॉ० संजय चौहान

चिर परिचित पीपल
विशालकाय रूप
फैली भीमकाय शाखाएं
मिलती शीतल छावं
आश्रय पाते खग-वृन्द।
कपिः समूह जहाँ
करते उन्मुक्त विचरण
प्रवासी स्वयं-समूह का शरण स्थल।
बाल, युवा, वृद्ध, नर-नारी का
बना हुआ क्रीड़ा-स्थल
गुल्ली डण्डा, कबड्डी, ताश सदृश खेलों की
नित लगती हैं बाजियाँ।
प्रभुत्व-सिद्ध-हेतु नहीं,
उत्साह, साहस, सामर्थ्य प्रदर्शन हेतु
रहती सदैव जिज्ञासा।
वर्षों का पंचायत-स्थल
निपटाश हुआ है यहाँ
विविध झगड़ों को
सजाया-सवारा गया
बिखरते-टूटते परिवारों को।
निः सृत करता प्राण वायु
ग्रीष्म की तपिस में
सर्व भस्म जिज्ञासु भास्कर
दयाभाव भुक्त वृद्ध रक्षक
करता सबको शरणागत।
नित्य लगते हैं मेले
सबको सम्मिलित होने की स्वतंत्रता

---

* *135/5 गवर्नमैंट कॉलोनी, घनूपुर छेहरहा, अमृतसर।*

दया, ममता, प्रेम, सद्भाव
सहिष्णुता का पड़ा है अकाल,
चारों ओर है अराजकता
लूटमार में संलिप्त जन
स्वयं की क्षुद्धा तृप्ति-हेतु।
बूढ़ा पीपल-उदास
भूखा-प्यासा है व्याकुल
नैवैद्य का अभाव
नहीं उड़ेलता कोई श्रद्धा-नीर
सर्व-समर्पित वृक्ष
खड़ा है ठगा-सा।
क्योंकि, बढ़ गयी है देवी-देवताओं की संख्या,
बँट गयी है कोटियाँ
बँट गये हैं लोग
बंट गया है धर्मस्थल
विखंडित हो गयी है धार्मिक-भावना।
नित्य होते संघर्ष
स्वधर्म, स्वदेवता, एवं धर्मस्थल की
सिद्ध करने की श्रेष्ठता।
शरीर-रूपी नैवैद्य का भक्षण कर
रूधिर जल का पान कर
जन-क्रन्दन का श्रवण कर,
तृप्त है इष्ट
हर्षित है इष्ट।
मानव के कलुषित कर्म से
दिग्भ्रमित धर्म से
अव्यवहारिक व्यवहार से
स्वयं के उपेक्षण से
क्लांत है बूढ़ा पीपल।

०००

कश्मीर की अनूठी तासीर

❒ ओ० पी० शर्मा विद्यार्थी

यह कश्मीर
यहां के झील, झरने और फूल
मन लुभाते हैं
अनूठा कौतूहल जगाते हैं
तुम में और मुझ में
हर झील झरने की
बसंत फूल खिलने की
कोई न कोई कहानी है
कश्मीर सौंदर्य की रानी है
कोणे-कोणे में हुस्न है
सब्ज और सफेद वसन है
यहां थी कभी
एक गहरी विशाल सतिसर झील
लहराती इठलाती मीलों मील
आकाश पूरा आगोश में लेती
चांद चांदनी को हिलोरे देती
दुष्ट पनपा जल उद्भव
शांति में उत्पात मचा तब
देवों ने लक्ष्य साधा कौंसर नाग से
भगाने को दुष्ट इस भाग से
कश्यप ऋषि, ब्रह्मा, विष्णु, वालभद्र जागे
पहाड़ कटा, जल हटा,
दुष्ट असहाय भागे मर गया,
जलोद्भव, खाली हो गयी झील
देव बसे, नाग बसे, देकर दैव दलील
अनंत झीलें ठिठकी रह गयीं पहाड़ों पर

इठलातीं, गातीं, अपनी हसीन आबशारों पर
झरने कल-कल बहते
मर्ग मैदान कहानियां कहते
वितस्ता कुलांचें भरती दूर निकलती
आलिंगन में रह गयी डल बूलर मचलती
कश्मीर की वादी हसीन हो गयी
जल जादू जगाती ज़मीन हो गयी
पुरानी झील का कीचड़, अब करेवा
हरियाली पनपी, उगा सेब, बादाम मेवा
डाली-डाली सेबों की सुर्ख लाली
हर आंगन में ठिठकी खुशहाली
कार्तिक मास के आने पर
पाम्पोर जैसे ठोर-ठिकानों पर
क्या खूब जमे केसर क्यारी
फूल बैंगनी, बैंगनी रंग पिचकारी
चिनारों ने रंग बदले, कांगड़ी जली
कहवे में केसर, हाऊसबोट कहती चली
ललद्यद, नुंदऋषि यहां आए
भेद-भाव, ऊंच-नीच सब मिटाए
सूफी संतों की सीख इतरायी
मंदिर मस्जिद मानवता महकायी
हब्बा खातून क्या रचती गाती
कुदरत कायनात संग हंसती हंसाती
पति ने उमंगों को नहीं पहचाना
युसुफ शाह ने माना साथ निभाना
गुरेज में गयी बन युसुफ की रानी
युसुफ अकबर का कैदी, बदल गयी कहानी
विरह में बिलखती, गाती दर्द भरे गीत
पहाड़ गूंजते, झरने रोते, मिलता न मीत
गुरेज में आज भी झरना, व्यथा जून की ब्यां करता
हब्बाखातून पर्वत भी संग में हां करता
(दर्द का पहाड़, दर्द का झरना देखे दावर)
दर्द भरी मौसिकी गूंजती आज भी मतवातर
हरमुख शिव का, जटाओं से उतरी गंगबल
कृष्णसर, विश्नसर, ब्रह्मसर सबमें अनूठी हलचल

कश्मीर में शिवदर्शन, कण-कण में शिव बिराजमान
पहलगाम से अमरनाथ, शेषनाग में शिव श्नान
गणेश पहाड़ के पार पंचतरणी, शिवलिंग में अंतरध्यान
कितनी कहानियां, कहानियों का क्या कौतूहल
कश्मीर अनूठा, अनूठा झील, झरना, फूल
धरती का स्वर्ग कश्मीर, कश्मीर की अनूठी तासीर।

०००

कविता और जीवन

❑ राजेंद्र निशेश

जीवन एक कविता की तरह होता है
और कविता जीवन की परिभाषा।
इन्सान की पीड़ा की अनुभूति होती है कविता
तलाशती है इन्सान के सवालों के जवाब,
धर्म, मृत्यु और आडम्बर से परे होती है कविता।
कभी नानक की वाणी सी छलकती
करती है नेह की बरसात,
कभी फक्कड़ होती है
कबीर की सधुक्कड़ी भाषा की तरह;
कभी बुल्लेशाह की तरह सीधी-सादी भाषा में
ईश्वर से सुरताल मिलाती है,
रैदास की तरह जीवन की गाँठ को सिलती है,
नाचती है, गाती है जुनून के आलम में
मीरा की तरह बनकर दीवानी
पी जाती है विष का प्याला अमृत समझकर।
कभी शाम के धुंधलके को जीती है यह
और कभी सुबह की लालिमा की तरह होती है,
प्रेम की शाश्वत अभिव्यक्ति बनती है कभी
कभी विरह और दर्द की
साक्षी बन जाती है।
इन्द्रधनुषी रंगों सी होती है कविता
और जीवन विभिन्न रंगों का नाम ही तो है!

०००

बैलेन्स शीट

❒ डॉ० रीता हजेला ''आराधना''

आर्थिक मन्दी एक स्लोगन है
जिसे चस्पां कर दिया गया है हर जगह
पल्स पोलियो के पोस्टर की तरह

हर शख्स जुटा है बनाने में बैलेन्स शीट
गृहणियां रसोई से निकल आई हैं बाहर
क्या पकाएं कैसे पकाएं का मुद्दा
खदबदा रहा है चूल्हे पर

जहीन जवान बेटे के सिर पर सवार
मुंह बाए खड़ा है
क्या कमाएं कैसे कमाएं का प्रश्न

पति महोदय झुके हैं
कागजों के ढेर पर
दफ्तर की ही नहीं घर की भी बनानी है
बैलेन्स शीट

चारों ओर चमक रहा लालबत्ती-सा
परिवार नियोजन का लाल तिकोन
इसके आगे बस
मुश्किल यह कि बैलेन्स ही गायब
बैलेन्स शीट से

एक अण्डे के बलबूते
ताश की ईमारत-सा खड़ा फार्म हाऊस
धाराशायी हो गया ज़मीन पर
एक दूसरे से पूछ रहे गवेषक
संगणना और प्रकृति में भी होता है कोई अंतर

---

* *687 हूडा फेस II, सेक्टर 12, पानीपत-132103 (हरियाणा)*

प्रश्न यह है कि किसने दी थी
चूजे की अग्रिम जमानत
कितने दिन टिकी रह सकती है
ताश के पत्तों से खड़ी यह इमारत
कौन रह सकता है उसके भीतर
कब जानोगे इस ज़िन्दगी को ?
ज़िन्दगी और कुछ भी हो सकती है
मगर आंकड़े नहीं होती ज़िन्दगी
इसीलिए उसे देखना ज़रूरी है
बैलेन्स शीट सरकाकर।

ooo

आखिर बात क्या है

□ मधुर गंजमुरादाबादी

गीत आते ही नहीं
अब अधर के द्वार,
आखिर बात क्या है ?

सुमन खिलते पर मधुप दिखते नहीं हैं,
अधर चुम्बन की कथा लिखते नहीं हैं।
नसों में होता नहीं
नव रुधिर का संचार
आखिर बात क्या है ?

सरित कल-कल स्वर कहीं सब खो गये क्या,
पांव के घुँघरू सुरभि के हो गये क्या ?
तरु-लताओं का नहीं
वह सरस अभिसार,
आखिर बात क्या है ?

काश रूठे पल सभी वे लौट आते,
हृदय-वन में भाव फिर वंशी बजाते।
एक मधु-ध्वनि से नयी
गूँजता संसार,
आखिर बात क्या है ?

ooo

---

* अध्यक्ष हितैषी स्मारक सेवा समिति गंजमुरादाबाद-उन्नाव उ०प्र०-241502

प्रकृति का असंतुलन

❐ खजूर सिंह

हे मानव! तू चिंतित नहीं है
क्या तुझे विदित नहीं है
सघन वृक्ष वनों का
बड़ी निर्दयता से
कत्लेआम हो रहा है

पीपल, बरगद, आम, जामुन
अपने पर होते अन्याय से
निः सहाय हो कर रो रहा है।
सूर्य का तेज ताप बढ़ रहा है
प्रकृति का संतुलन बिगड़ रहा है
आज मानव चिंतित नहीं है
जाने क्यों उसे विदित नहीं है
पशु–पक्षियों को सता रहा है
सागर के जीवों को खा रहा है।
प्रतिशोध की आग में
समुद्र क्रोधित हो कर
भवभूमी की ओर निकल पड़ा है
प्रकृति का संतुलन बिगड़ रहा है।
अब सावन में बारिश नहीं होती
कहीं आग सा तपता आकाश है
कहीं बाढ़ से होता विनाश है
हिमगिरि का श्वेत हिम वस्त्र
पिघल रहा है
प्रकृति का संतुलन बिगड़ रहा है।

०००

गज़ल

❒ अर्श सहबाई

किस पे हंसना है किस पे रोना है।
हो के रहता है जो भी होना है॥

खुल ही जायेगा जब परख होगी।
कौन पीतल है, कौन सोना है॥

हर अमल का यहां है रद्देअमल।
काटना है वही जो बोना है॥

मौजे-तूफां कभी इधर से गुज़र।
इक ज़रा नाव को डूबोना है॥

यकजा करता हूं अपने अश्कों को।
इक लड़ी में इन्हें पिरोना है॥

मिरा जशने-वफ़ात[1] कब होगा ?
मुझको उसमें शरीक होना है॥

सोचता हूं कि ज़िन्दगी में और।
कितना हसना है, कितना रोना है॥

बाख्तन[2] है मिरी जन्म भूमि।
इसकी मिट्टी भी मुझको सोना है॥

बांटता है वो तल्खियां सब में।
उसकी फितरत में खार बोना है॥

ज़िन्दगी कुछ दिनों के हंगामें।
और फिर गहरी नींद सोना है॥

दिल के इस शहरे-आरजू में मुझे।
और कितना ख़राब होना है॥

ज़िन्दगी है उभरता सूरज 'अर्श'।
इसको आख़िर गरूब होना है॥

०००

1. *मृत्यु उत्सव*
2. *शायर की जन्म भूमि*

संस्कृति

☐ सरदार हरचरन सिंह सूदन

हमारे पूर्वजों की
प्राचीन, अनमोल विरासत
अपने आदर्श रूपी
पावन जल से
वह सिंचित कर गए जो!

आधुनिक वारिसों के
विसंगति पूर्ण व्यवहार
स्वार्थपूर्ण नीति के
वश में होकर
लुप्त हो रही है वो!!

संस्कार, परम्पराएं और साहित्य
कहाँ खो रहे हैं
इस पर करें कोई गौर!

असभ्यता, कायरता और कलुषिता
रूपी दानवों का
क्यों आ गया दौर!!

जहाँ ऋषि मुनियों ने
सदा किया है
वेद-उद्भेद!

जहाँ त्याग तपस्या से उन्होंने
सदा मिटाया है
वर्ण-भेद!!

* 69/11 निकट गुरुद्वारा साहिब, पुरानी रेलवे लाईन, आर. एस. पुरा, जम्मू-181 102 मोबाईल : 09419624278

जहाँ अडिग हिमालय
हो खड़ा
गा रहा है गौर गान!

जहाँ आदर्श
श्री राम एवं गुरु नानक के
दे रहे हैं सबको मान!!

ऐसी सभ्यता और संस्कृति को
यदि बचाना है
तो बनें स्वाभिमानी!

आचार हमारे उत्कृष्ट हों
और व्यवहार में
न हो ग्लानि!!

०००

स्मृतियां.....?

❑ राजेश्वर भाखड़ी

भावनाओं के अतिरेक में
स्मृतियों के अवलोकन मात्र
अपने ही परिवेश में
स्मृतियों की कोंपलों से
बुन बैठा एक जाल
नित पनपती स्मृतियों से
वह हो गया है
चहुंओर फैले जंगल सा
काया हो रही है निश्चेष्ट
धुंधली पड़ रही है स्मृतियां
सिकुड़ता जा रहा है जाल
एक आभास चेता रहा है
तुम भी तो थे और हो
मात्र एक स्मृति
जिसे मिलती रहती है
अस्थाई काया
प्रकृति के प्रयोजन अनुसार
मत होके भयभीत
तुम होने जा रहे हो एक अंग
स्मृतियों के जंगल का
जहां फिर से आ मिलेंगे तुम्हारे अपने
किन्हीं के लिए स्मृतियां बन कर

ooo

* *23-ग्रेटर कैलाश, जम्मू। मोबाईल : 9419244870*

मां का ऋण

सीमा 'राजेश'

जीवन शैली मैली–मैली
किंस बात पर इतराऊँ मैं
थमती नहीं है अश्रुधारा
किस बात पर मुस्काऊँ मैं

आज माँ की ममता की फिक्र नहीं
कितने दुख झेले जिक्र नहीं
माँ की दो रोटी चुभती है
कैसे मन को समझाऊँ मैं
जीवन शैली मैली–मैली

भाई–भाई में शत्रु सा नाता।
दो रोटी के लिए बंटती माता
बचपन में था जो चेहरा भोला
क्यों ? इतना स्वार्थी हो जाता
चुका न सकूंगी ''मां का ऋण''
चाहे जीवन अर्पण कर जाऊँ मैं
जीवन शैली मैली–मैली

जिसकी अगुँली से सीखा चलना
गिरकर उठना फिर उठकर गिरना,
सूखा आँचल गीला करना
कैसे पल–पल का ऋण चुकाऊँ मैं
जीवन शैली मैली–मैली

'गर' चाहते हो अपना जीवन सफल बनाना
माँ को पूजो ऋण चुका दो
बन माँ की लाठी आगे आओ
आने बाली पीढ़ी से, अपने सपनों को चाहूँ मैं
जीवन शैली मैली–मैली

ooo

* वार्ड नं० 10, हीरानगर, कठुआ। मोबाईल : 9419245437

व्यंग्य

कनेडा से आया मेरा दोस्त

❑ डॉ. फकीर चंद शुक्ला

तीन-चार दिन हुए डाक से एक निमन्त्रण-पत्र प्राप्त हुआ था। एक प्रमुख साहित्यिक संस्था के सहयोग से शहर के प्रसिद्ध होटल में पुस्तक विमोचन होना था। इस पुस्तक का लेखक अब विदेश में रहता था लेकिन आजकल पंजाब आया हुआ था।

लेखक मेरा परिचित था। यहां रहते हुए वह प्रायः मुझ से मिला करता था। आयु में छोटा होने के बावजूद भी वह मुझ से काफी खुला हुआ था। कोई भी कविता-कहानी लिखने के पश्चात वह मुझ से अवश्य ठीक करवाता था और उसकी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में यदा-कदा प्रकाशित हो जाती थीं। फिर उसके विदेश चले जाने के बारे में पता चला। लेकिन ना तो जाने से पहले वह मुझ से मिलकर गया था और न ही उसने बाद में कोई सम्पर्क रखा था।

यद्यपि समारोह के लिये निमन्त्रण-पत्र मिल गया था लेकिन फिर भी ना जाने क्यों बार-बार मन में यह सोच प्रबल हो रही थी कि उसे स्वयं मुझे बुलाना चाहिए था। इस प्रकार का निमन्त्रण-पत्र तो संस्था वालों ने सभी सदस्यों को भेजा होगा। लेकिन अगले ही पल मैं यह भी सोचने लगा कि घर बैठ कर भी मैंने क्या करना है। होटल में 'माल' मिलना स्वभाविक था। ऐसे शुभ अवसर लेखक कहाँ छोड़ते हैं-लेखक मैं होऊँ या कोई अन्य !

लेकिन समारोह से एक दिन पहले उसका फ़ोन आ गया था-''सर जी, (ना जाने क्यों शुरू से ही मुझे 'सर जी' कह कर बुलाता है) निमन्त्रण-पत्र तो मिल गया होगा। आपने अवश्य पधारना है। आपके बिना मेरा फंक्शन अधूरा रहेगा।''

अब तो ना जाने की कोई उलझन ना थी।

....और मैं समारोह वाले दिन होटल में जा पहुंचा।

मुझे देखते ही वह खिल उठा। मुझे आगोश में भरते हुए बोला-''सर जी, आप से कुछ विचार-विमर्श करना है। फंक्शन के बाद कहीं चले मत जाना।'' एक पल रुक कर उस ने कहा-''डाँट वरी सर जी, अब मैं आप को सम्मान करने के लिए नहीं कहने वाला।''

* 230-सी, भाई रणधीर सिंह नगर, लुधियाना-141012 (पंजाब) मोबाइल 9815359222

अरे.....! कमाल है अभी तक उसे सम्मान वाली बात नहीं भूली थी।

वह प्राय: मुझ से आग्रह किया करता था-''सर जी, मुझे भी अपनी संस्था की ओर से सम्मानित कर दो।''

''लेकिन तुम्हारी तो अभी एक भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई।'' मैं अपनी विवशता जताता तो वह और भी भड़क उठता-''यहां हर दूजे-चौथे दिन किसी-न-किसी महिला को सम्मानित करते रहते हैं, उनकी कौन-सी पुस्तक छपी होती है।''

''लेकिन हम ने तो कभी ऐसी किसी महिला को सम्मानित नहीं किया'' मैं स्पष्टीकरण देने का प्रयास करता तो वह और भी तिलमिला उठता-''यहां तो पहले औरत हो, फिर सुन्दर हो, तीसरे उसे कोई परहेज ना हो.... तब तो आप जैसे लेखक स्वयं ही उस के नाम पर कविताएं भी लिख देते हैं तथा उसे सम्मानित करवाने के लिए प्रयास भी करते हैं।''

''रहने दे यार, क्यों ऊलजलूल बोल रहा है। बता तो सही मैंने कब किसी महिला को कविताएँ लिख कर दी हैं।.....और मैं तो कविता लिखता भी नहीं''।

''आप नहीं लिखते तो आप के संगी-साथी लिख देते हैं...'' उसकी आवाज़ तल्खी भरी थी-''......और सीथे लाल किले पर चढ़ा देते हैं''।

''लाल किले पर? मैं कुछ समझा नहीं''।

''इतने भोले मत बनो'' उसने मेरी ओर घूर कर देखते हुए कहा-''ज़रा बताओ तो भला वह गोरी-चिट्टी भटूरे जैसी लड़की कैसे प्रसिद्ध कवयित्री बन गयी.....? इधर तो उसे कभी किसी कवि दरबार में नहीं देखा, लेकिन वह लाल किले पर राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित कवि दरबार में कविता बोल आई''।

''हताश मत हो यार.....तू भी एक दिन लाल किले पर पहुंच जायेगा''। मैंने उसे शांत करने के प्रयास में कहा।

''मैं कैसे पहुंच सकता हूँ'' वह निश्वास छोड़ते हुए बोला-''मेरे में वह गुण कहाँ जिनकी बदौलत सम्पादकगण पत्रिकाओं में मेरी रचनाएं मेरी फोटो सहित प्रकाशित करने को आतुर हों....''।

उस से प्राय: इस प्रकार की नोक-झोंक होती रहती थी।

...और फिर वह विदेश चला गया था। उसके पश्चात् उसका कोई समाचार नहीं मिला था।

आज उसके समारोह में सभी गणमान्य व्यक्ति पहुंचे हुये थे। शहर के प्रसिद्ध नेता ने पुस्तक का विमोचन किया था। इसके पश्चात् कुछ विद्वानों ने पुस्तक के बारे में अपने विचार प्रकट किये।

उनके विचार सुनकर यूं लगने लगा था कि ना तो उससे पहले कोई लेखक पैदा हुआ है और ना ही इन विद्वानों ने पैदा होने देना है। हमारे देश में तो नसबंदी होने के बावजूद भी बच्चे पैदा हो जाते हैं, इसलिए विद्वानों को कोई ढंग ढूंढना पड़ेगा ताकि इस लेखक से बढ़िया कोई लेखक पैदा ही न हो सके। विद्वानों द्वारा प्रशंसनीय शब्दों की बम्बारमेंट कुछ ऐसा ही भ्रम डाल रही थी।

लेखक ने अपने संघर्ष के बारे में बतलाया कि किस प्रकार उसने विदेश जाकर फैक्टरियों, खेतों, होटलों, पेट्रोल स्टेशन इत्यादि पर काम किया। यहां तक कि टायलेट भी साफ किये।....फिर एक दिन उसने अपनी संघर्षमयी गाथा को शब्दों का जामा पहना दिया....फलस्वरूप यह पुस्तक आपके सम्मुख है।

पुस्तक के बारे में परिपत्र पढ़ने वाले विद्वानों को मिमेंटो, बढ़िया दोशाला तथा बंद लिफाफे में ''लक्ष्मी'' भेंट स्वरूप प्रदान किये गये। इसके पश्चात् मदिरा की तो जैसे छबील लग गई थी। वेटरों ने भी नान वैज फू ड परोसने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी।

समारोह के दौरान भी वह मुझे दो-तीन बार आग्रह कर गया था कि फंक्शन के बाद मुझे उसके साथ होटल जाना है-कोई आवश्यक काम है।

....और फंक्शन के पश्चात् मैं उस के साथ पाँच सितारा होटल की ओर चल पड़ा, जहां वह ठहरा हुआ था।

जब हम होटल की लाबी में पहुंचे तो वहाँ प्रतीक्षारत एक अत्यन्त सुन्दर लड़की को देखकर वह मकई के भुने हुये दानों की तरह खिल उठा-''सारी, मुझे तो याद ही नहीं रहा तुमने आना था...फंक्शन में क्यों नहीं आयी...?''

''थोड़ा बिज़ी थी...''उसने बेवजह आश्यकता से अधिक मुस्कुराते हुए कहा।

हम तीनों उसके रूम की ओर चलने लगे। चलते-चलते ही उसने परिचय करवाया- ''यह प्रो. दिलखुश है..... मेरी रचनाओं पर शोध कर रही है...विख्यात लेखिका है....''।

यद्यपि मैं साहित्यिक फंक्शनों में प्रायः कम ही जाता हूँ, मगर फिर भी अपने शहर के लेखक-लेखिका के बारे में तो जानता ही हूँ। पर इस लड़की के बारे में तो मैंने कभी नहीं सुना था।

''आप क्या लिखती हैं मैडम'' मैंने पूछा मगर जवाब उसकी बजाये मित्र ने दिया- ''कमाल है आप को अपने शहर की लेखिकाओं के बारे में भी नहीं पता।'' पर अगले ही पल जैसे उसने अपने कथन में सुधार कर दिया हो-''सर जी, आपको पता भी कैसे चल पायेगा....आप तो ज़्यादातर इंडिया से बाहर ही रहते हैं।'' उस ने मेरी ओर देखते हुए मुस्कुरा कर कहा-''यह तो आलोचनात्मक लेख लिखती है''।

तब उस ने उस लड़की से मेरा परिचय करवाया-''यह डाक्टर साहिब शिरोमणि साहित्यकार हैं, मेरे तो गुरु हैं'' पर तभी अनायास ही उस लड़की ने बेवजह दाँत निकालते हुए मुझ से पूछ लिया-''आप भी कुछ लिखते हैं?'' सुनकर एकबारगी तो मैं स्तब्ध रह गया। मगर मैंने मात्र इतना ही कहा-''जी, मैं तो कुछ नहीं लिखता.. मैं तो वैज्ञानिक हूँ''।

सम्भवतः वह कुछ और कहती पर लेखक मित्र मानो पर्दाफाश करने लगा था-''सर जी, मैंने भी वहाँ एक साहित्यिक संस्था बनाई है....सौरी आप को बतलाना तो भूल ही गया। इस वर्ष का अन्तर्राष्ट्रीय अवार्ड मिस दिलखुश को दिया जाना है...और अवार्ड लेने यह जल्दी ही कनेडा जा रही है'' पल-भर रुककर कहा उसने-''हम तो सर जी, किसी की साहित्य के प्रति लग्न को प्रमुखता देते हैं....आपकी तरह यह नहीं पूछते कि कितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं...?''

अब तक हम उसके रूम के निकट पहुंच चुके थे। वह चाबी लगाकर रूम खोलने लगा। मैंने वहाँ से चले जाना ही उचित समझा-''अच्छा यार, मैं चलता हूं...देर हो रही है।''

''जैसा आप उचित समझें सर जी। फिर आइयेगा कभी...'' कहते हुए उस ने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया और मैंने भी अपना हाथ उसके हाथ से हल्का-सा छुआ दिया। वह मिस दिलखुश के साथ कमरे में चला गया और मैं लम्बे-लम्बे डग भरते हुए होटल से बाहर जाने लगा था।

ooo

साक्षात्कार

वादी, वितस्ता और संगरमाल मेरे लेखन के पहले-पहले गवाह हैं। चंद्रकांता से बातचीत

❑ सविता उपध्याय

कश्मीर को वहां की विशिष्ट लोकसंस्कृति, सामाजिक वा प्रशासनिक व्यवस्था के साथ हिंदी साहित्य में पहली बार दर्ज करने वाली वरिष्ठ साहित्यकार चन्द्रकांता हिंदी साहित्य में सम्मानित ऊँचाइयाँ प्राप्त कर चुकी हैं। वे प्रतिष्ठित व्यास सम्मान अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों से नवाज़ी जा चुकी हैं। स्वभाव में आत्मीयता और संवाद में बेबाक स्पष्टवादिता रखने वाली चंद्रकांता का मानना है कि अच्छा लेखक होने के साथ अच्छा व्यक्ति होना ज़रूरी है। उन्होंने जहाँ कश्मीर की प्राकृतिक सुषमा, सामाजिक संस्कृति और लोकरंगों के 'ऐलान गली जिन्दा है', 'यहां वितस्ता बहती है' उपन्यासों और 'पोशनूल की वापसी' जैसी कहानियों में उभारा है वहीं 'कथा सतीसर' जैसे वृहत्त उपन्यास और अनेक कहानियों, कविताओं में वादी में आतंक, शोषण और निष्कासन से उत्पन्न मानवीय यातना के विभिन्न आयामों को साहित्यिक फलक पर चित्रित कर उस सामाजिक संस्कृति के विखंडन के त्रास की कथा भी कहा है। स्वयं विस्थापन का दुःख भोग चुकी चन्द्रकांता अपने घर से बेघर हुए कश्मीरी पंडितों की व्यथा-कथा इन शब्दों में कहतीं हैं-''कटे कोनों वाले पोस्टकार्ड चोंच में दबाए / कहाँ पते ढूंढेंगे अब कबूतर ? / किस तिलिस्म से पहुँचेंगे बेटों के संदेश / द्वार टोहती माँओं तक ? / सूनी काकपट्टी रोते हैं कव्वे ज़ार-ज़ार / क्यों हो गए बंजारे मेरे ?.......।'' प्रस्तुत है उनसे बातचीत के अंश:-

1. सविता-श्रीनगर कश्मीर को भारत का स्विट्ज़रलैंड कहा गया है इस प्राकृतिक सुषमा में आप जन्मी-पली व बढ़ी हुई क्या वहाँ की प्राकृतिक सुषमा से ही आपको लेखन की प्रेरणा मिली या अन्य कोई परिवेशगत या मनोजगत संदर्भ रहे जिन्होंने लेखन के लिए आपको प्रेरित किया ? यह भी बताइए कि आपके लेखन की शुरुआत कब और कहाँ हुई ?

चन्द्रकांता

निवास : 3020, सैक्टर-23, गुड़गाँव-122017 (हरियाणा) फोन : 0124-2360180 मोबाइल : 9810629950

डॉ. सविता उपाध्याय

सलवान पब्लिक स्कूल, गुड़गाँव निवास : मकान संख्या : बी-1146, ग्राउंड फ्लोर, इफको कॉलोनी, सेक्टर : 17-बी, गुड़गांव (हरियाणा) पिन-122001 फोन-0124-4011491, 98718999391

चंद्रकांता- यह बात सही है कि श्रीनगर कश्मीर को भारत का स्विट्ज़रलैंड कहा गया है। प्राकृतिक सुषमा का तो असीम भंडार वहाँ बिखरा पड़ा है। बचपन से ही प्रकृति से मेरा अज़हद लगाव रहा है, पता नहीं क्या था कि वेद, देवदारू, चिनार के छतनार पेड़ मुझे सम्मोहित करते थे। बादाम, आड़ू की बौर-गन्ध से महकती हवाएँ मुझे बौरा देतीं। मैं जानना चाहती थी पेड़-पौधों, झीलों-झरनों से सजी प्रकृति के रहस्य को!

यों तो लेखन के बीज कहीं जन्म से ही लेखक के अंदर विद्यमान होते हैं, फिर कोई घटना घटती है या कोई स्थिति विशेष के भीतरी रसायन को आलोड़ित करती है। रिएक्ट करने को उकसाती है तो वह आलोड़न शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति तलाशता है। मैं मानती हूँ कि मेरे लेखन का जन्म दु:ख से हुआ। मैंने क्रौंच पक्षी की चीत्कार अपने भीतर उठती सुनी और यह तब हुआ जब बहुत छोटी उम्र में मेरी माँ का देहावसान हुआ। बालमन पर लगे उस आघात को मैं व्यक्त नहीं कर पाई। रो-धोकर कुछ कह देती तो मन में गुब्बार न रहता पर वह दुख मेरे अंदर जम सा गया और शायद उसे व्यक्त करने का कारण बन गया, लेखन। मैं यह भी मानती हूँ कि बचपन की अकत जिज्ञासा और बालमन पर, माँ की मृत्यु से पड़ी खरोंच के साथ ही, किस विशेष क्षण में मेरे भीतर रचनाकार का जन्म हुआ, गोकि उस विशेष बिन्दु पर उँगली रखना संभव नहीं ! आगे, लेखक के जन्म की प्रक्रिया उत्सुकताओं, प्रश्नों और बीहड़ संवेगों से आरंभ होकर शाब्दिक अभिव्यक्ति तक एक लंबी कष्टकर यात्रा से गुजरती है। शुरुआत तो वहीं वितस्ता के किनारे के घर से ही हुई बारह वर्ष की उम्र में एक कविता से। वादी, वितस्ता और संगरमाल मेरे लेखन के पहले-पहले गवाह हैं।

2. सविता-सृजन की पीड़ा को शिशु जन्म की पीड़ा के साथ जोड़कर देखा गया है, इस संदर्भ में आप अपनी रचना प्रक्रिया के विषय में कुछ बताइए।

चन्द्रकांता- रचना-प्रक्रिया मुझे हमेशा से गुट्ठिल और कुछ-कुछ रहस्यमयी लगी है, एक पेचीदा प्रक्रिया जो काग़ज़ पर उतरने से पहले मन-मस्तिष्क में आकार लेने लगती है। कभी भीतर कोई फाँस-सी गड़ जाती है और पता ही नहीं चलता वह क्या है और क्यों है ? एक अनाम-सी पीर स्नायुतंत्रों में फैलती, कभी रिसते फोड़े-सी तकलीफ़देह, कि उससे मुक्त होना लाजिमी। कभी बर्फ की ठंड से अकड़े यख़ हाथों की, गर्म आँच के स्पर्श से उठने वाली, गुनगुनी-तीखी अव्यक्त-सी अनुभूति, जिसकी व्याख्या करना कठिन। भीतर के रसायन में कोई खलबली-सी मचती है जैसे किसी ने शांत सरोवर में ढेला फेंक छोटे-छोटे वृत्त बना दिए हों, जो अनायास फैलते-फैलते कभी खिलखिल करती सुखद हिलोरें बनने लगते हैं और कभी-कभी घुमावदार जानलेवा भंवर। कभी मन-मस्तिष्क के पर्दे पर कोई छाया-सी डोलती है,जो अभिव्यक्ति के लिए शब्द ढूँढती है और कभी यह भीतर एक कौंध, एक लपक की तरह उठती बाहर-भीतर के अँधेरों को उजास से भर देती है, तब कोई रास्ता नज़र आता है और रचनाकार, अन्वेषक की भूमिका निभाता कदम-दर-कदम आगे बढ़ने लगता है। लेखन प्रक्रिया के दौरान, विश्लेषण-परीक्षण के द्वंद्वों से गुज़रते, रचना, कभी सोचे हुए से भिन्न अर्थों की सृष्टि भी करती है। भिन्न निष्कर्षों तक पहुँचती है। तब लेखक की दखलअंदाज़ी नहीं

हो पाती। बकौल हेनरी जेम्स, "रचनाकार अंधेरे में काम करता है। वही करता है, जो कर सकता है, जो उसके पास है, वही दे सकता है....।" लेकिन सही और सच की इस टटोल में वह अन्वेषक की भूमिका ज़रूर निभा रहा होता है।

3. सविता-बचपन में आपने किस प्रकार के सपने देखे ? क्या आप बचपन से ही लेखिका बनना चाहतीं थीं ?

चन्द्रकांता-स्वप्न बहुत देखती थी पर रात के स्वप्न दिन में भूल जाते थे। खुली आँखों मैंने स्वप्न नहीं देखे, अपने चौतरफ की स्थितियाँ और उनसे लोगों की उम्मीदें, दुःख और संघर्ष देखे। लेखिका होना क्या होता है, जानती नहीं थी, लेखिका बनूँगी इसकी कल्पना भी नहीं की थी पर मन में जो गुब्बार, जो प्रतिक्रिया जन्मती थी उसे कहीं तो बाहर आना ही था, सो लेखिका बन गई।

4. सविता- क्या आपको लगता है लेखन विरासत में मिलता है, जैसे प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय लेखक रहे हैं और आपने 'मेरे भोज पत्र' आत्मकथात्मक संस्मरण में लिखा है कि आपके पिता जी, प्रो. पंडिता अंग्रेज़ी के बड़े विद्वान थे, उन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखीं थीं, क्या आपके लेखन पर उनके व्यक्तित्व और कृतित्त्व का कुछ प्रभाव पड़ा?

चन्दकांता- लेखन न विरासत में मिलता है न लेखक होने की कोई शर्त होती है। हाँ यदि किसी के भीतर लेखकीय संवेदना और जिज्ञासा भाव बीज रूप में मौजूद हो, साहित्यिक माहौल और अच्छी पुस्तकों का संग उसे मिलता रहे तो लेखक की रूचि बढ़ जाती है। लेखक पिता का पुत्र लेखक होना संयोग ही कहा जाएगा। क्योंकि लेखक कोई किसी को बना नहीं सकता। जहाँ तक मेरा प्रश्न है मेरे पिता प्रो. रामचंद्र पंडिता अंग्रेज़ी साहित्य के विद्वान तो थे ही संस्कृत और हिन्दी साहित्य से भी गहरा लगाव था। उनकी लाइब्रेरी में इन तीनों भाषाओं की पुस्तकें थीं। स्वयं उन्होंने अंग्रेज़ी ग्रामर की पुस्तकें ज़रूर लिखीं पर साहित्य में योगदान न के बराबर था। यद्यपि हमारी माँ के निधन पर उन्होंने अवश्य माँ को आँसुओं का अर्घ्य देते हुए कुछ कविताएँ लिखीं किन्तु वह कहीं प्रकाशित नहीं करवाई। लेखन का बीज जब मेरे अन्दर फूटा तब तक मैंने उनका कुछ भी लिखा हुआ पढ़ा नहीं था। मुझे नहीं लगता कि लेखन विरासत में मिला या मिलता है, मेरे भाई-बहन बड़े विद्वान हैं आई, एस.ऑफिसर, इंजीनियर पढ़े-लिखे, विचारशील किंतु हमारे घर-परिवार में दूर-दूर तक कोई लेखक नहीं है। कुछ तो होता होगा बीज रूप में हमारे भीतर जन्मजात जिसे स्पष्ट करना कठिन है लेकिन पिता जी के व्यक्तित्व का प्रभाव मुझ पर और लेखन पर ज़रूर पड़ा। वे बड़े दबंग स्पष्टभाषी और गलत का विरोध करने वाले व्यक्ति थे। मेरी स्पष्टवादिता पिता के जाने-अनजाने दिए गए संस्कारों में शामिल है। कुछ तत्त्व रहें होंगे, कुछ ऐसे भीतरी-बाहरी दबाव जिन्होंने संवाद के लिए उकसाया, लेखन संवाद ही तो है समाज और समय से।

5. सविता-सुना है आपका विवाह छोटी आयु में हुआ कितनी आयु थी तब ?

चन्द्रकांता-मात्र तेरह वर्ष।

6. सविता-आप एक ब्राह्मण परिवार से हैं जहाँ आज से पचास वर्ष पूर्व पर्दा प्रथा का बहुत अधिक प्रचलन था उस समय आपने ससुराल में इन बंदिशों के बीच किस प्रकार अपनी शिक्षा पूरी की तथा घर-परिवार से आपको कितना सहयोग-असहयोग मिला तथा विवाह होने पर आपने अपनी शिक्षा किस प्रकार पूरी की ?

चन्द्रकांता-हमारे पिता स्त्री शिक्षा के पक्षधर थे। छोटी आयु में विवाह होने का कारण माँ का असमय निधन होना था। लेकिन एक बात पिताजी ने ज़रूर की कि हमारे ससुराल वालों से वादा लिया कि हमारी पढ़ाई में कोई बाधा नहीं आएगी। जो उन्होंने निभाया। मेरे ससुर जी पंडित केशवनाथ विशिन स्वयं अध्यापक थे और शिक्षा का महत्त्व जानते ते। सास जी ने भी पढ़ने में बाधा नहीं डाली। हाँ, बंदिशें तो थीं, बहू रानी का घरेलू ज़िम्मेदारी निभाने के बाद ही स्कूल-कॉलेज जाना संभव था। पारिवारिक से ज़्यादा सामाजिक बंदिशें थीं। लेकिन मैंने बंदिशों को अपनी पढ़ाई के आड़े नहीं आने दिया। घर की बड़ी बहू होने के दायित्व निभाए, सामाजिकता भी और पढ़ाई भी पूरी कर ली।

7. सविता-आपने कहा बारह वर्ष की आयु में आपने पहली कविता लिखी। आप की कहानी, उपन्यास की यात्रा कहाँ से शुरू हुई मेरा मतलब आपके प्रतिबद्ध लेखन की शुरुआत से है।

चन्द्रकांता-जिसे प्रतिबद्ध या नियमित लेखन कहती हो, उसकी शुरुआत 1967 (उन्नीस सौ सड़सठ) से मैं मानती हूँ। उससे पहले तो, कभी जो भी छुटपुट लिखा, स्कूल, कॉलेज की पत्रिकाओं में लिखा।वो अधिकांशतः कविताएँ ही थीं। आगे कुछ कहानियाँ रोगिणी, खोटी चवन्नी आदि जो कुछ लिखा वह कॉलेज की पत्र-पत्रिकाओं तक सीमित रहा इस बीज जीवन में काफी कुछ घटता गया, घर-गृहस्थी और सामाजिक दायित्व निभाते लेखन पीछे छूटता गया। दो वर्ष पिलानी में अध्यापन करने के बाद जब मेरे पति नौकरी के सिलसिले में हैदराबाद चले गए तो यहीं मैंने निर्णय लिया कि मैं नौकरी छोड़ स्वतंत्र लेखन करूँगी। यहीं मैंने गंभीरता से लिखना शुरू किया और मेरी पहली कहानी 'खून के रेशे' कल्पना पत्रिका, हैदराबाद में छपी। उसके बाद तो ज्ञानोदय, नई कहानियाँ, धर्मयुग, सारिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि व्यवसायिक-अव्यवसायिक पत्रिकाओं में कहानियाँ आदि छपती रहीं। 1967 में मेरी लेखकीय यात्रा जो शुरू हुई, उसके बाद पीछे मुड़कर नहीं देखा।

8. सविता-चन्द्रकांता जी, आज कहानियों के कथ्य और शिल्प के प्रयोगों में काफी बदलाव आया है आपको अपनी पहले-पहल कहानी व आज की कहानी में क्या अंतर लगता है ?

चन्द्रकांता- पिछले तीसेक वर्षों में हिन्दी कहानी कथ्य और शिल्पगत प्रयोगों के साथ अनेक सोपान पार कर चुकी है। आज कहानी तेजी से बदलते समय संदर्भों में बदले मिजाज़ और नए तेवर के साथ व्यवस्था के प्रतिपक्ष में बैठी व्यक्ति एवं समाज जटिल होते यथार्थ का परीक्षण एवं पुनर्निर्माण कर रही है।

हो पाती। बकौल हेनरी जेम्स, ''रचनाकार अंधेरे में काम करता है। वही करता है, जो कर सकता है, जो उसके पास है, वही दे सकता है....।'' लेकिन सही और सच की इस टटोल में वह अन्वेषक की भूमिका ज़रूर निभा रहा होता है।

3. सविता-बचपन में आपने किस प्रकार के सपने देखे ? क्या आप बचपन से ही लेखिका बनना चाहतीं थीं ?

चन्द्रकांता-स्वप्न बहुत देखती थी पर रात के स्वप्न दिन में भूल जाते थे। खुली आँखों मैंने स्वप्न नहीं देखे, अपने चौतरफ की स्थितियाँ और उनसे लोगों की उम्मीदें, दु:ख और संघर्ष देखे। लेखिका होना क्या होता है, जानती नहीं थी, लेखिका बनूँगी इसकी कल्पना भी नहीं की थी पर मन में जो गुब्बार, जो प्रतिक्रिया जन्मती थी उसे कहीं तो बाहर आना ही था, सो लेखिका बन गई।

4. सविता- क्या आपको लगता है लेखन विरासत में मिलता है, जैसे प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय लेखक रहे हैं और आपने 'मेरे भोज पत्र' आत्मकथात्मक संस्मरण में लिखा है कि आपके पिता जी, प्रो. पंडिता अंग्रेज़ी के बड़े विद्वान थे, उन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखीं थीं, क्या आपके लेखन पर उनके व्यक्तित्व और कृतित्त्व का कुछ प्रभाव पड़ा?

चन्दकांता- लेखन न विरासत में मिलता है न लेखक होने की कोई शर्त होती है। हाँ यदि किसी के भीतर लेखकीय संवेदना और जिज्ञासा भाव बीज रूप में मौजूद हो, साहित्यिक माहौल और अच्छी पुस्तकों का संग उसे मिलता रहे तो लेखक की रूचि बढ़ जाती है। लेखक पिता का पुत्र लेखक होना संयोग ही कहा जाएगा। क्योंकि लेखक कोई किसी को बना नहीं सकता। जहाँ तक मेरा प्रश्न है मेरे पिता प्रो. रामचंद्र पंडिता अंग्रेज़ी साहित्य के विद्वान तो थे ही संस्कृत और हिन्दी साहित्य से भी गहरा लगाव था। उनकी लाइब्रेरी में इन तीनों भाषाओं की पुस्तकें थीं। स्वयं उन्होंने अंग्रेज़ी ग्रामर की पुस्तकें ज़रूर लिखीं पर साहित्य में योगदान न के बराबर था। यद्यपि हमारी माँ के निधन पर उन्होंने अवश्य माँ को आँसुओं का अर्घ्य देते हुए कुछ कविताएँ लिखीं किन्तु वह कहीं प्रकाशित नहीं करवाई। लेखन का बीज जब मेरे अन्दर फूटा तब तक मैंने उनका कुछ भी लिखा हुआ पढ़ा नहीं था। मुझे नहीं लगता कि लेखन विरासत में मिला या मिलता है, मेरे भाई-बहन बड़े विद्वान हैं आई, एस.ऑफिसर, इंजीनियर पढ़े-लिखे, विचारशील किंतु हमारे घर-परिवार में दूर-दूर तक कोई लेखक नहीं है। कुछ तो होता होगा बीज रूप में हमारे भीतर जन्मजात जिसे स्पष्ट करना कठिन है लेकिन पिता जी के व्यक्तित्व का प्रभाव मुझ पर और लेखन पर ज़रूर पड़ा। वे बड़े दबंग स्पष्टभाषी और गलत का विरोध करने वाले व्यक्ति थे। मेरी स्पष्टवादिता पिता के जाने-अनजाने दिए गए संस्कारों में शामिल है। कुछ तत्त्व रहें होंगे, कुछ ऐसे भीतरी-बाहरी दबाव जिन्होंने संवाद के लिए उकसाया, लेखन संवाद ही तो है समाज और समय से।

5. सविता-सुना है आपका विवाह छोटी आयु में हुआ कितनी आयु थी तब ?

चन्द्रकांता-मात्र तेरह वर्ष।

6. सविता-आप एक ब्राह्मण परिवार से हैं जहाँ आज से पचास वर्ष पूर्व पर्दा प्रथा का बहुत अधिक प्रचलन था उस समय आपने ससुराल में इन बंदिशों के बीच किस प्रकार अपनी शिक्षा पूरी की तथा घर-परिवार से आपको कितना सहयोग-असहयोग मिला तथा विवाह होने पर आपने अपनी शिक्षा किस प्रकार पूरी की ?

चन्द्रकांता-हमारे पिता स्त्री शिक्षा के पक्षधर थे। छोटी आयु में विवाह होने का कारण माँ का असमय निधन होना था। लेकिन एक बात पिताजी ने ज़रूर की कि हमारे ससुराल वालों से वादा लिया कि हमारी पढ़ाई में कोई बाधा नहीं आएगी। जो उन्होंने निभाया। मेरे ससुर जी पंडित केशवनाथ विशिन स्वयं अध्यापक थे और शिक्षा का महत्त्व जानते ते। सास जी ने भी पढ़ने में बाधा नहीं डाली। हाँ, बंदिशें तो थीं, बहू रानी का घरेलू ज़िम्मेदारी निभाने के बाद ही स्कूल-कॉलेज जाना संभव था। पारिवारिक से ज़्यादा सामाजिक बंदिशें थीं। लेकिन मैंने बंदिशों को अपनी पढ़ाई के आड़े नहीं आने दिया। घर की बड़ी बहू होने के दायित्व निभाए, सामाजिकता भी और पढ़ाई भी पूरी कर ली।

7. सविता-आपने कहा बारह वर्ष की आयु में आपने पहली कविता लिखी। आप की कहानी, उपन्यास की यात्रा कहाँ से शुरू हुई मेरा मतलब आपके प्रतिबद्ध लेखन की शुरुआत से है।

चन्द्रकांता-जिसे प्रतिबद्ध या नियमित लेखन कहती हो, उसकी शुरुआत 1967 (उन्नीस सौ सड़सठ) से मैं मानती हूँ। उससे पहले तो, कभी जो भी छुटपुट लिखा, स्कूल, कॉलेज की पत्रिकाओं में लिखा।वो अधिकांशत: कविताएँ ही थीं। आगे कुछ कहानियाँ रोगिणी, खोटी चवन्नी आदि जो कुछ लिखा वह कॉलेज की पत्र-पत्रिकाओं तक सीमित रहा इस बीज जीवन में काफी कुछ घटता गया, घर-गृहस्थी और सामाजिक दायित्व निभाते लेखन पीछे छूटता गया। दो वर्ष पिलानी में अध्यापन करने के बाद जब मेरे पति नौकरी के सिलसिले में हैदराबाद चले गए तो यहीं मैंने निर्णय लिया कि मैं नौकरी छोड़ स्वतंत्र लेखन करूँगी। यहीं मैंने गंभीरता से लिखना शुरू किया और मेरी पहली कहानी 'खून के रेशे' कल्पना पत्रिका, हैदराबाद में छपी। उसके बाद तो ज्ञानोदय, नई कहानियाँ, धर्मयुग, सारिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि व्यवसायिक-अव्यवसायिक पत्रिकाओं में कहानियाँ आदि छपती रहीं। 1967 में मेरी लेखकीय यात्रा जो शुरू हुई, उसके बाद पीछे मुड़कर नहीं देखा।

8. सविता-चन्द्रकांता जी, आज कहानियों के कथ्य और शिल्प के प्रयोगों में काफी बदलाव आया है आपको अपनी पहले-पहल कहानी व आज की कहानी में क्या अंतर लगता है ?

चन्द्रकांता- पिछले तीसेक वर्षों में हिन्दी कहानी कथ्य और शिल्पगत प्रयोगों के साथ अनेक सोपान पार कर चुकी है। आज कहानी तेजी से बदलते समय संदर्भों में बदले मिजाज़ और नए तेवर के साथ व्यवस्था के प्रतिपक्ष में बैठी व्यक्ति एवं समाज जटिल होते यथार्थ का परीक्षण एवं पुनर्निर्माण कर रही है।

सांस्कृतिक विखंडन के इस दौर में कहानी मानवीय मूल्यों को बचाने की पक्षधरता निभा रही है। शिल्पगत प्रयोगों और भाषा के स्तर पर नए प्रयोग हो रहे हैं जिनका स्वागत होना चाहिए लेकिन अनर्गल शैल्पिक प्रयोगों से लेखक को सतर्क रहना चाहिए। आज नए लेखक समय की नई आहटों को नए शिल्प के साथ पकड़ने के प्रयास कर रहे हैं- अल्पना मिश्र, नीलाक्षी, मनीषा, कुणाल सिंह, शशिभूषण द्विवेदी आदि अच्छी रचनाएँ दे रहे हैं। जहाँ तक मेरी बात है, लेखन को मैं स्व से परे की यात्रा मानती हूँ। पहली-पहली कहानियाँ घर-परिवार के नितांत निजी अनुभवों की अभिव्यक्ति मानी जाएँगी हालांकि वह भी मात्र निज के घेरे तक सीमित नहीं रहतीं, एक बड़े समाज से जुड़ जाती हैं पर आज मैं निजी सीमित दायरों से बाहर निकल समाज के वृहत्तर संदर्भों पर लिख रही हूँ। कहानियाँ लिखने के लिए अपने भीतर संवेदना के उत्खनन के साथ मानवीय करुणा को अनुभव वृत्त में समो लेने का अभ्यास ज़रूरी है और पात्रों की पीड़ा का भागीदार होना भी। आज से करीब तीस वर्ष पहले मैंने आपसी सौहार्द और उदात्त प्रेम की कहानी 'पोशनूल की वापसी' लिखी थी। पर समय के इस दौर में समाज परिवर्तनों के दौर से गुजरा, आपसी सौहार्द की जगह अविश्वास और आतंकवाद ने ले ली। ऐसे में 'आवाज़', 'काली बर्फ' और 'शरणागत दीनार्त' जैसी कहानियाँ लिखीं।

9. सविता- आपका 'यहीं कहीं आसपास' केवल एक ही कविता संग्रह प्रकाशित हुआ इसके बाद अन्य कोई नहीं क्या कारण है ?

चन्द्रकांता-सविता, कविता से ही मैंने अपने लेखन की शुरुआत की, बहुत छोटी उम्र में जैसा कह चुकी हूँ, केवल बारह वर्ष की उम्र में मैंने पहली कविता लिखी। मैंने सायास कविताएँ कभी नहीं लिखीं, यह मन के प्रवाह से फूटने वाले वह झरने हैं जो पता नहीं कब कागज़ पर उतर जाते हैं। आज भी, जो भाव संवेदन त्वरित अभिव्यक्ति चाहते हैं, वे कविता में ही फूटते हैं पर मुझे लगता है हमारे सामने जो वृहत्तर समस्याएँ हैं जिनके लिए गहन वैचारिक परीक्षण और विस्तृत आकलन की ज़रूरत है, वे उपन्यास या कहानी में ज़्यादा प्रभावी ढंग से संप्रेषित हो पाती हैं। अपने चौतरफ मैंने जो शोषक व्यवस्था देखी-भोगी, उसका कारगर प्रतिरोध मुझे कथा-उपन्यास में ही सही लगा। व्यवस्था के अलग-अलग अनुषंग हैं जो कहानी और उससे भी ज़्यादा उपन्यास में विस्तृत भावभूमि के साथ अभिव्यक्ति चाहते हैं। उपन्यास में मुख्य कथा के साथ कई प्रासंगिक कथाएं चलती हैं। आपने देखा भी होगा कि मेरे उपन्यास एकांगी नहीं हैं, उसमें मैं पूरे परिवेश को उसकी ऐतिहासिक और व्यवस्थाजन्य स्थितियों को साथ लेकर चली हूँ। लेकिन कविता मैं आज भी लिखती हूँ हालाँकि अब मुझे लोग कवि के रूप में उतना नहीं जानते जितना एक कथाकार के रूप में।

10. सविता-ऐसा तो बड़े-बड़े रचनाकारों के साथ हुआ चाहे वे अज्ञेय हों, मुक्तिबोध या निराला हों।

चन्द्रकांता-सही कह रही हो।

11. सविता- अच्छा, आपके कविता संग्रह 'यहीं कहीं आसपास' पर रशियन कल्चरल सेंटर में विचार-गोष्ठी हुई थी तब डॉ. नामवर सिंह और निर्मला जैन ने आपकी कविताओं पर वक्तव्य दिए थे। उस समय डॉ. नामवर सिंह ने कहा था चन्द्रकांता पहले एक कवयित्री है बाद में कथाकार और डॉ. निर्मला जैन बोली थीं कि चन्द्रकांता पहले कथाकार है बाद में कवयित्री। वे आपस में इस बात को लेकर उलझ गए थे। इस बारे में आप क्या कहेंगी ?

चन्द्रकांता-सविता, मैंने कविता, कहानियाँ, उपन्यास, संस्मरण व अन्य लगभग सभी विधाओं में रचना की है। डॉ. नामवर सिंह और डॉ. निर्मला जैन मेरे लेखन को जानते हैं मैं उनका आदर करती हूँ। मैंने 'कथा सतीसर' उपन्यास में कुछ कविताएँ भी कथा में गूंथ दी हैं और कविताओं में कथाओं को समाहित किया है। मेरे लिए दोनों विधाएं बराबर हैं- यह तो कथ्य की ज़रूरत को मद्देनज़र रखकर ही तय किया जाता है कि उसे किस विधा में व्यक्त किया जाए। यों सच कहूँ तो मन से मैं कवयित्री हूँ।

12. सविता-आपके लेखन का उद्देश्य क्या है ?

चन्द्रकांता-रचनाकार के नाते मैं मनुष्य विरोध तंत्र को कटघरे में खड़ा कर मानवीय करुणा और आत्मीयता को बचाए रखना चाहती हूँ । आज की यांत्रिक होती दुनिया में मनुष्य की संवेदना बनी रहे यही ज़रूरी है।

13. सविता-अर्थांतर' आपका पहला उपन्यास है, इसका अनुवाद उड़िया भाषा में श्री श्रीनिवास उद्गाता ने किया उन्होंने इसे काव्यकृति कहा था इस बारे में आप क्या कहना चाहेंगी ?

चन्द्रकांता-कवि मन गद्य लेखक को ज़्यादा प्रभावी उपन्यास लिखवाता है। मुझे याद है उन दिनों मैं भुवनेश्वर में थी उद्गाता जी ने मेरा उपन्यास पढ़ा। वह मेरे पास आए उन्हें यह उपन्यास बहुत अच्छा लगा उन्होंने कहा मुझे यह उपन्यास नहीं कविता जैसा लगा और उन्होंने इसका उड़िया भाषा में अनुवाद करने की अनुमति भी माँगी।

14. सविता-सन् 1980 में 'अर्थांतर' आपने लिखा आज के संदर्भ में वह कितना प्रासंगिक है और तब से लेकर आज तक पुरुष की सोच में कितना परिवर्तन आया है ?

चन्द्रकांता-'अर्थांतर' उपन्यास के केन्द्र में स्त्री है,स्त्री अस्मिता के प्रश्न हैं। यहाँ पुरुष वर्चस्व के कारण स्त्री स्वयं को इस्तेमाल होने देने से इंकार करती है और संस्कारों का मान करते हुए भी रूढ़ नैतिकता का विरोध करती है। उसका विश्वास है कि हमारे संस्कार, हमारी मान्यताएँ जीवन को सही शक्ल देने के लिए हैं। जीवन को जीने की आकांक्षा जिस प्रकार पुरुष में है, उसी प्रकार स्त्री में भी है। दांपत्य संबंधों का सम्मान करते हुए वह अपने दायित्वों का निर्वाह करती है और अपनी अस्मिता का हनन नहीं होने देती। 1980 में लिखा गया उपन्यास आज के संदर्भ में ज़्यादा प्रासंगिक है क्योंकि आज स्त्री अपनी आकांक्षा व अस्मिता

के प्रति ज़्यादा सचेत है। जहाँ तक पुरुष मानसिकता का प्रश्न है, उसमें बदलाव तो आ रहा है, पर अभी काफी सुधार होना शेष है।

15. सविता-स्त्री-विमर्श के झंडे उठाए बगैर आपने स्त्री के अधिकार, अस्मिता और संघर्ष से जुड़े प्रश्न को स्त्री पात्रों के माध्यम से उठाया है ? ऐलान गली की रत्नी हो, अर्थांतर की कमो हो या कथा सतीसर की कात्या,नसीम या राज़ा, आपके स्त्री पात्र अपने स्त्रीत्व पर गर्व करने वाली, स्वाभिमानी, संघर्षशील व ऐसी अपराजिताएँ हैं जो अंत तक संघर्ष करती रहतीं हैं, इस पाशविक समय में जहाँ हर जगह स्त्री को लीलने के लिए 'पायथन' पसरे हुए हैं, वहाँ शोषण के विरुद्ध खड़ी सिद्धि, नूराबाई हो या 'कोठे पर कागा' की प्रेमिका एक मिसाल कायम करती हैं, आप इन स्त्री पात्रों के माध्यम से क्या कहना चाहतीं हैं ?

चन्द्रकांता-जहाँ तक स्त्री-विमर्श की बात है, लिखते वक्त मैंने यह कभी नहीं सोचा कि मैं स्त्री-विमर्श के तहत लिख रही हूँ। मैं सामान्य जीवन से जब कोई पात्र उठाती हूँ, उसको अपनी समग्रता में उठाती हूँ, उसमें व्यवस्था से उत्पन्न उनकी यातना, संघर्ष चेतना, अधिकारों व अस्मिता से जुड़े प्रश्न होते हैं। मेरी स्त्रियाँ दिए गए समय और ब्राह्य व्यवस्था के साथ अपनी अस्मिता और अधिकार चेतना के साथ द्वन्द्वात्मक संघर्ष करतीं हैं। वह ऐलान गली की रत्नी हो, अर्थांतर की कमो हो या कथा सीतसर की कात्या, नसीम या राज़ा हो। ये सभी सशक्त स्त्री पात्र हैं जो विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष करते हुए अपने रास्ते स्वयं तय करते हैं। यह सही है कि तमाम बदलाव के बावजूद आज भी जहाँ स्त्री देह के लोलुप पायथनों की कमी नहीं है, वहीं स्त्रियों में उनसे सामना करने का साहस भी अभूतपूर्व है। इन स्त्री पात्रों के माध्यम से लेखक पाठक को स्थिति विशेष से रूबरू कराता है। वह विकल्प नहीं बताता बल्कि स्थिति का परीक्षण कर पाठक की सोच पर दस्तक देता है। पाठक स्वयं गुट्ठिल समस्याओं से निकलने के रास्ते तलाशता है।

16. सविता-मध्यवर्गीय समाज के बाह्य और रूढ़ नैतिकताओं से आपको अजीब-सी चिढ़ थी क्या इसी कारण शोषित महिला के प्रति आपने उपन्यासों में आवाज़ उठाई है?

चन्द्रकांता-ज़ाहिर है, लेखन के माध्यम से हम शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं इसी सृजनात्मक प्रतिरोध से समाज की चेतना पर दस्तक दी जाती है।

17. सविता-'बाकी सब खैरियत है' उपन्यास में सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि पर बदलते संबंधों, संयुक्त परिवार की घुटन, विदेशावास की सुविधाओं का मोह आदि कई गंभीर प्रश्न उठाए हैं चन्द्रकांता जी आपको क्या लगता है कि विदेशावास का मोह संयुक्त परिवार की रीढ़ को चरमरा नहीं देता ?

चन्द्रकांता-आज इस वैश्वीकरण के युग में हम जी रहे हैं वहाँ तकनीकी और प्रोद्योगिकी ने दुनिया को बहुत छोटा कर दिया है। कई संदर्भ बदले हैं संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, जिससे

नई समस्यायें पैदा हुई हैं, आज के अर्थ केंद्रित समय में मानवीय संबंधों और मूल्यों का विघटन हो रहा है। मात्र विदेशावास की ही बात नहीं, पूरा सांस्कृतिक परिवेश बदल रहा है।

18. सविता-कश्मीर की पृष्ठभूमि में रचित कहानियों में नारी पात्रों पर दोहरी मार पड़ी है 'शरणागत दीनार्त' की जया हो या 'काली बर्फ' की परमी इन नारियों पर हुए अत्याचारों को आपने खुली किताब की तरह व्यक्त किया है, इन पात्रों की मनोव्यथा लिखते हुए आप कैसा महसूस करतीं थीं कश्मीर व उनके हालातों पर लिखते हुए आपको क्या कभी कोई डर या भय नहीं लगा ?

चन्द्रकांता-लेखक यदि डर जाए तो शायद वह कभी लिख ही नहीं पाएगा या सुविधाजनक प्रश्नों के घेरे में ही घूमता रहेगा। आतंकत्रस्त कश्मीर के संदर्भ में मैंने जो कुछ भी लिखा है आज मुझे आश्चर्य होता है कि यह सब मैं कैसे लिख पाई उस वक्त कश्मीर में आतंकवाद चरम पर था। मैं अनकहा, अव्यक्त कहना चाहती थी जो लोगों के सामाने नहीं आया था। कभी-कभी लगता था आतंकवाद के कारण मेरी जान को खतरा भी हो सकता है क्योंकि लोग मुझे पढ़ते हैं वहाँ, पर फिर लगा सच कहने के लिए तो जोखिम उठाना ही पड़ता है। मुझे ब्रेख़्त की एक बात याद आती है उसने लिखा है कि यदि आप शोषितों के बारे में लिखते हैं तो आपको यह लिखना होगा कि शोषण क्यों हो रहा है ? कैसे हो रहा है? इसके पीछे कौन से सच हैं उन्हें कहने का आपको साहस होना चाहिए अगर आपको सच कहने का साहस नहीं है तो आपको नहीं लिखना चाहिए। मुझे यह भी लगता है कि सच कहना ज़रूरी है और सच का प्रचार करें तो वह भी गलत नहीं। यदि आप पीड़ितों की व्यथा का प्रचार कर रहे हैं तो यह भी एक साहित्यिक दायित्व है। हाँ, साहित्य की मर्यादा के भीतर ही आपको काम करना होता है।

19. सविता-'शरणागत दीनार्त', 'किस्सा गाशकौल', 'फ्रांस' कहानियों में जहाँ आतंकवाद की आत्मघाती परिणतियों और मानवीय त्रासदियों की कुछ बानगियाँ हैं, वहीं 'जलकुंड का रंग', 'अब्बू ने कहा था' और कहीं 'कुछ शेष' अविश्वास के माहौल में मानवीय करुणा और साहस की मिसालें हैं इतने वृहत स्तर पर लिए गए विषयों को दो विपरीत ध्रुवों पर बैठ समय के कुछ जीवंत साक्ष्य आपने प्रस्तुत किए हैं।

चन्द्रकांता-रचनाकार यदि त्रास और मानवीय यातना की बात कहता है तो उम्मीद और स्वप्नों को भी पूरा होते देखना चाहता है। लेखक उम्मीद का दामन कभी नहीं छोड़ता।

20. सविता-'ऐलान गली ज़िंदा है' उपन्यास लिखने के पीछे आपके क्या भावानात्मक व विचारधारात्मक आग्रह थे इसके विषय में कु छ बताइए ?

चन्द्रकांता-'ऐलान गली ज़िंदा है' लिखने का एक कारण यह रहा है कि कश्मीर से बाहर रहते हुए लोगों में कश्मीर और वहाँ के निवासियों के बारे में मुझे कई भ्रांतियाँ और गलतफहमियाँ नज़र आईं। कश्मीर उनके लिए एक राजनैतिक जीवन-शैली भी है, अपना

सदियों से पोसा जीवन-दर्शन है, इसके बारे में लोगों के पास कोई खास जानकारी नहीं थी। उनके लिए कश्मीर हिन्दी फिल्मों का रूमानी प्रदेश है या ज़्यादा-से-ज़्यादा कल्हण-विल्हण, कल्लट-मम्मट का ऐतिहासिक गौरव मंडित प्रदेश, जो कि आज समय की धूल में खो हो गया है। यह अज्ञान था या एक समृद्ध संस्कृति का अस्वीकार?

यह बात मुझे और मेरी कश्मीरियत को कौंचती थी। मैं वादी से बाहर के बड़े समाज को कश्मीरियों के जीवन-दर्शन, रंगों में धड़कते जीवन से परिचित कराना चाहती थी।

21. सविता-कश्मीर की पृष्ठभूमि पर आपका एक ओर उपन्यास है 'यहाँ वितस्ता बहती है' जिसमें आपने अपने पिता को केन्द्र में रखा है। ऐसे कौन से मानसिक या भौतिक कारण थे जिन्होंने आपसे यह उपन्यास लिखवाया ?

चन्द्रकांता-पिता के विषय में कह चुकी हूँ कि उनका बहुत कुछ मेरे संस्कारों में, स्वभाव में शामिल है। 'यहां वितस्ता बहती है' में मेरे पिता का जिया-भोगा जीवन है, जिसे उपन्यास के रूप में इसलिए लिखा कि कई सच हमारे अपनों को तकलीफ देते हैं इसलिए उन्हें उपन्यास के माध्यम का जामा पहनाकर उसे वैयक्तिक रूप से न देखकर सामाजिक चेहरा दिया जाता है। पिता जी के व्यक्तित्व से मैं काफी प्रभावित थी उनका जीवन पूरे समाज के लिए एक मिसाल था। वे कश्मीर के गिने-चुने अध्यापकों एवं समाज-सुधारकों में जाने जाते रहे हैं। वे चुपचाप दीपक की तरह जले और अपने चौतरफ प्रकाश फैलाते रहे परन्तु कभी इसका गुमान न किया। जीवन के अन्तिम दिनों में वे काफी बीमार रहे तब मैंने उनसे वादा किया था कि मैं आपके बारे में लिखूंगी। उत्तर में उनकी आंखें भर आईं थीं और उन्होंने मुझे आशीष दिया। 'यहां वितस्ता बहती है' के माध्यम से मैंने पितृऋण ही नहीं चुकाया परम्परा के महत्त्व को भी रेखांकित किया, पिता मात्र आपके जन्मदाता ही नहीं होते, एक परंपरा भी होते हैं, जिन्हें मुड़कर देखने की ज़रूरत है।

22. सविता-हां यह बात अज्ञेय जी ने कही है, क्या आपने चाय पीते हुए अपने पिता के बारे में सोचा है। अच्छा नहीं है पिताओं के बारे में सोचना अपनी कलई खुल जाती है।

चन्द्रकांता-बिल्कुल ! कोई प्रकाश लीक यदि पीछे से दिखाई पड़े, तो आगे के रास्ते देखना आसान होता है।

23. सविता-वृहत उपन्यास 'कथा सतीसर' पर आपको व्यास सम्मान सहित कई पुरस्कार मिले हैं तथा इस पर 50 से भी अधिक शोध कार्य हुए हैं। 'कथा सतीसर' कश्मीर को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है इससे पूर्व आप कश्मीर की पृष्ठभूमि पर कई कहानियाँ तथा बहुचर्चित उपन्यास 'ऐलान गली ज़िन्दा है' तथा 'यहां वितस्ता बहती है' लिख चुकी थीं इसके पश्चात 2001 में 'कथा सतीसर' लिखने की आपको क्या आवश्यकता महसूस हुई ?

चन्द्रकांता-कथा सतीसर न लिखा जाता यदि आतंकवाद और साम्प्रदायिक उन्माद कश्मीर की धरती को रक्त रंजित रणक्षेत्र न बनाता। कश्मीर में जो सदियों पुराना सद्‌भाव और सामाजिक संस्कृति हमने देखी थी, उसका विखंडन न हुआ होता और यदि कश्मीर के अल्प संख्यक वर्ग को वहाँ से निष्कासन न मिलता। यह निर्वासित कश्मीरियों के लिए ही दुख और यातना का विषय नहीं बल्कि पूरे राष्ट्र के लिए लज्जा की बात है, जो अपने नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा भी नहीं कर पाया और बिना विभाजन के हमें अपने ही राष्ट्र में शरणार्थी होना पड़ा, इसके कारणों की तह में जाकर कुछ न बोले गए सच अनावृत्त करने ज़रूरी थे। यों तो इसमें सभी कश्मीरियों की यातना को स्वर दिया गया है, पर विस्थापन के कारणों की गहरी पड़ताल की गई है। इसमें 1931 से 2001 तक के बनते-बिगड़ते कश्मीर की कथा, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक पृष्ठभूमि के साथ दर्ज है।

24. सविता-आपके वृहत् महाग्रंथ 'कथा सतीसर' को समीक्षकों ने अपनी-अपनी नज़रों से देखा, सराहा और टिप्पणियाँ कीं। किसी ने इसे 'डिस्कवरी ऑफ जम्मू-कश्मीर' कहा, किसी ने 'निर्वासन का दंश भोगते कश्मीरियों का दर्दे-बयाँ' कहा। डॉ. सत्यकाम ने 'कथा सतीसर' को विस्थापितों की पीड़ा का आख्यान कहा है तथा किसी ने आपको हिन्दुओं की प्रवक्ता माना जहाँ तक मेरा मानना है आपने इस उपन्यास में न केवल पंडितों की समस्या को निर्भीक तौर पर विश्व के सामने रखा है बल्कि मुसलमानों के दुःख, समस्या, सांस्कृतिक उन्माद और रीति-रिवाज़ों का भी चित्रण किया है। इसी के साथ इसमें सत्तर वर्षों के सांस्कृतिक आंदोलन को भी शामिल किया गया है। सुप्रसिद्ध कश्मीरी कवि श्री अर्जुननाथ मजबूर ने भी इस बात को माना है कि उपन्यास बिना किसी पक्षपात के हिन्दू-मुस्लिम दोनों के दुःखों की साझी अभिव्यक्ति करता है। इस विषय में कुछ बताइए।

चन्द्रकांता-सविता, लेखक रचना करता है और समीक्षक अपने समीक्षात्मक विवेक से उसे परखते हैं। उसमें उनका अपना दृष्टिकोण, अपनी विचारधारा और साहित्य से उनकी अपेक्षाएँ शामिल होती हैं। अगर समीक्षा रचना केन्द्रित होती है तो उसमें रचना के सही पक्ष उभरकर आते हैं, इसमें कोई शक नहीं है। 'कथा सतीसर' बड़े फलक का उपन्यास है जिसके लिए डॉ. रमेश दवे ने कहा है कि इसकी समीक्षा करना कठिन समीक्षा कर्म है। शायद ठीक ही, इसे डिस्कवरी ऑफ जम्मू-कश्मीर कहा गया है। इसमें निर्वासन भोगते कश्मीरियों का दर्द तो है ही, पर मैंने कोशिश की है कि इसमें दोनों वर्गों (हिन्दू-मुसलमान) के कष्टों को सामने लाया जाये। आप जानते हो, दुर्भाग्यवश कश्मीर में कुछ ऐसी स्थितियाँ बनीं कि एक वर्ग को वहाँ से पलायन करना पड़ा। अपने ही देश में विस्थापन त्रासद और लज्जा की बात थी जिसके कारणों की पड़ताल बहुत ज़रूरी थी क्योंकि ये विस्थापन बिना विभाजन के हुआ और अपने ही राष्ट्र में एक वर्ग शरणार्थी बन गया। स्वयं भुक्तभोगी होने के नाते मुझे अपने सभी हमवतनों के दुःख को आवाज़ देना एक बहुत बड़ा दायित्व लगा। इससे कोई मुझे हिन्दुओं का प्रवक्ता माने तो मुझे इतना ही कहना है कि मैं सभी पीड़ित कश्मीरियों की प्रवक्ता बनी हूँ। डॉ. रोहिणी अग्रवाल ने कथा सतीसर को कश्मीर का ज़िंदगीनामा माना है, और कहा

है कि इसमें समय के साथ मुठभेड़ है। व्यक्तिगत रूप में भी मैंने इस निष्कासन की पीड़ा को भोगा है। भौतिक दृष्टि से भी और मानसिक स्तर पर भी। अब उस दुःख को क्या कहना जो मेरी पूरी बिरादरी ने भोगा है।

25. सविता-प्रख्यात समीक्षक डॉ. विजेन्द्र नारायण सिंह ने 'कथा सतीसर' की समीक्षा करते हुए लिखा है कि अल्पसंख्यक की यातना का वर्णन तसलीमा नसरीन और चन्द्रकांता दोनों ने किया है, पर तसलीमा को हमने अंतरराष्ट्रीय हीरो का दर्जा दिया है क्योंकि वे बंगलादेश की बहुसंख्यक है। लेकिन तुलनात्मक दृष्टि से चन्द्रकांता उनकी तुलना में काफी बड़ी रचनाकार है। कश्मीरी बहुसंख्यक सांप्रदायिकता पर बेबाक ढंग से लिखना, उसने नंगेपन को बेपर्द करने में उन्होंने जिस साहस का परिचय दिया है, उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, वह कम है । इस संदर्भ में आप क्या कहना चाहेंगी ?

चन्द्रकांता- डॉ. विजेंद्र नारायण सिंह जी बड़े प्रबुद्ध समीक्षक हैं उन्होंने रचना का बारीकी से अध्ययन करके निष्कर्ष निकाले हैं। मुझे प्रसन्नता है कि उन्होंने मेरे लेखकीय मंतव्य को समझा और विस्थापितों की त्रासद स्थितियों को मानवीय दृष्टिकोण से देखा और परखा, मैं इसके लिए उनका आभार मानती हूँ।

26. सविता-श्री अरुण कौल 'कथा सतीसर' पर एक वृहत् टी.वी. सीरियल बनाना चाहते थे इस संबंध में आप क्या कहना चाहती हैं ?

चन्द्रकांता- अरुण जी अब नहीं हैं उनके निधन का बहुत दुःख हुआ उन्होंने जाने से पहले कहा था कश्मीर पर कोई बड़ा काम करना चाहता हूँ। उन्होंने इसे महाकाव्य कहा था। इस उपन्यास पर एक वृहत् सीरियल बनाने की योजना थी जो उनके निधन से अधूरी रह गई किन्तु आगे कुछ-न-कुछ तो योजना बनानी होगी।

27. सविता-विस्थापन और क्षरण की मनोभूमि पर लिखे गए 'कथा सतीसर' में आप जहाँ समय के सामाजिक, सांस्कृतिक इतिवृत की रचना करते हैं वहीं दूसरी ओर यथार्थ को प्रकट करते हुए संपूर्ण कश्मीर का परिदृश्य हमारे सामने रखते हैं। प्रो. चमनलाल सप्रू ने लिखा कल्हण ने राजतरंगिनी लिखी चन्द्रकांता ने कथा सतीसर लिख कर कश्मीर की जनतरंगिणी रची है। इस विषय में आप क्या कहना चाहेंगी ?

चन्द्रकांता-कथा सतीसर में कश्मीर के पिछले सत्तर वर्षों की कहानी है जिसमें इसके सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक पक्षों को समेटा गया है। इसमें कश्मीर के स्वर्ग से नरक बनने की दास्तान है और इन परिस्थितियों के कारक तत्त्वों की गहरी पड़ताल की गई है जिसमें मनुष्य की व्यथा-कथा तो दर्ज है ही साथ में व्यक्त में मूल अधिकारों और अस्मिता के हनन जैसी समस्याओं की तह तक जाने का प्रयास है और व्यवस्था की गलत नीतियों का विरोध भी है। इसमें चूँकि सामयिक व्यवस्था और राजनीति का पर्दाफाश किया गया है और बिना किसी जोड़-तोड़ के समय का साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है, तो इसे जीवंत इतिहास कह भी

सकते हैं किन्तु इस उपन्यास का मूल प्रयोजन मनुष्य की व्यथा-कथा को वाणी देना है। जहाँ तक सप्रू जी का कहना है कि वे कश्मीर के अतीत और वर्तमान के ऐतिहासिक और राजनैतिक संदर्भों के साथ सांस्कृतिक विखंडन की पीड़ा के भी दृष्टा एवं भोक्ता हैं उन्होंने स्वयं विस्थापन का त्रास भोगा है। उन्होंने कथा सतीसर के महत्त्व को समझा, मै आभारी हूँ।

28. सविता- 'कथा सतीसर' उपन्यास में आपने कश्मीर के उद्‌भव, विकास, अवसान, पुनःस्थापन संपूर्ण जीवनवृत्त को एकसाथ लिया है इसी के साथ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी पर विस्तार से अंतरकथाओं के माध्यम से व्यक्त किया है इतने गहन व गंभीर विषय पर लिखते समय आपको किन-किन संघर्षों का सामना करना पड़ा ?

चन्द्रकांता-किसी भी वृहत् परिवेश को उपन्यास में उठाने के लिए शोध की ज़रूरत तो होती ही है, शोध में ही दो वर्ष लगे थे, मैंने उन पुस्तकों का हवाला भी दिया है। उपन्यास पूरा करने में मुझे आठ वर्ष लगे। वे वर्ष मेरे लिए कम यातनापूर्ण न थे। एक पुस्तक में सभी कुछ समाहित करना कठिन कर्म था पर मन में संकल्प था तो कमोवेश पूरा हो गया। इसमें कश्मीर की सांस्कृतिक व राजनैतिक पृष्ठभूमि तो है ही पार्श्व में पौराणिक संदर्भ भी हैं। कहना, भोगना, जीना सभी कुछ था यहाँ। पर मानवीय व्यथा केन्द्र में थी, जिसके कारण मानसिक उद्वेलन भी रहा। मुझे कभी-कभी डर भी लगता था कि पता नहीं इसे पूरा कर भी पाऊँगी या नहीं। एनी डिलार्ड के कहे यह शब्द कि उपन्यास लिखना कुछ ऐसा ही जोखिम भरा काम था जैसे एक शेर को पिंजरे में बन्द करने का साहस।

29. सविता-विस्थापन के बाद लोगों का पहला प्रस्थान जम्मू की ओर था तो वहां के लोगों की क्या प्रतिक्रिया थी ?

चन्द्रकांता-मैंने कथा सतीसर में एक पूरा अध्याय इस विषय पर लिखा है। घर से पलायन के बाद पंडितों की पहली शरणस्थली तो जम्मू ही थी और जम्मू वालों ने बाहें फैलाकर उन्हें अपनाया। यों जम्मू-कश्मीर एक ही स्टेट हैं दोनों का आपस में गहरा रिश्ता है प्रशासनिक भी और ऐतिहासिक भी। जैनुलावदीन की पत्नी जम्मू की राजकुमारी थीं। डोगरों का राज्य जम्मू-कश्मीर पर करीब सौ वर्ष रहा और कश्मीरी पंडित तो राजा को भगवान समान मानते रहे हैं। जम्मू-कश्मीर की शीतकालीन राजधानी भी है कश्मीरी और डोगरे दोनों सदियों से मिलजुल कर ही रहे हैं।

30. सविता-क्या आप जम्मू में रही हैं ?

चन्द्रकांता-मैं करीब छः वर्ष जम्मू में रही। वीमेन्स कॉलेज परेड ग्राउंड में बी.ए की छात्रा रही हूँ। मेरे देवर ने यहीं साइंस कॉलेज में बी.एस.सी. किया। मेरे पिता जी शुरू-शुरू में जम्मू कॉलेज में पढ़ाते भी रहे। मेरी बेटी राका का जन्म भी जम्मू में हुआ तब हम पक्की ढक्की में रहते थे। तब हमने पूरे मुहल्ले में मिठाई बाँटी थी। भाई त्रिलोकीनाथ पंडिता ने जम्मू

में इंजीनियर इंस्टिट्यूट भी खोला था। काफी अच्छी यादें हैं जम्मू की। बल्कि पक्की-ढक्की में जिस घर में हम रहते थे, वहां के ठाकुर और ठकुराइन से हमारे बड़े आत्मीय संबंध रहे। उन्हीं को केन्द्र में रखकर मैंने 'अंतिम साक्ष्य' उपन्यास लिखा है।

31. सविता-आप कश्मीर में जन्मीं-पली-बढ़ीं और देश-विदेश में कई घरों में रहीं, ऐसा कौन-सा घर है जो अभी तक आपकी यादों में दस्तक देता है ?

चन्द्रकांता-देश-विदेश में अनेक घरों में रहने के बाद भी वही घर स्मृतियों में रचा-बसा है जहाँ बचपन की मस्तियाँ हैं और यौवन की यादें और भरे पूरे घर की गहमागहमी और आत्मीय घेरे में अपनेपन की सौंध स्मृतियों में सुरक्षित हैं। वह श्रीनगर कश्मीर में गणेश मंदिर के सामने वितस्ता किनारे का पंचमंजिला घर, जहाँ खिड़की पर बैठकर शंकराचार्य हारी पर्वत और वितस्ता को एकसाथ देख सकती थी। उस जैसा कोई दूसरा घर नहीं है।

32. सविता-अपनी भूमि पर लौटना किसे अच्छा नहीं लगता हाल में ही सुना 4,3000 के क़रीब कश्मीरी विस्थापित परिवार कश्मीर में लौटने को तैयार हैं बीस वर्षों से अपने ही देश में विस्थापितों का जीवन व्यतीत कर रहे कश्मीरी पंडित समुदाय में कश्मीर वापसी को लेकर होड़ मचने लगी है सरकारी नौकरी और फ्लैट की पेशकश व सुरक्षा के पुख्ता इंतज़ाम का ऐलान किया गया है क्या आपको लगता है कि कश्मीर में पहले जैसा जीवन व्यतीत कर पाएँगे ?

चन्द्रकांता-हाँ, अभी-अभी ऐसे समाचार सुनने में आ रहे हैं। घर वापसी तो सभी विस्थापित चाहते हैं पर वहाँ जैसे हालात हैं कहना कठिन है कि कहाँ तक वे आतंक मुक्त और सुरक्षित रह पाएँगे। यह वहाँ की नई सरकार और राष्ट्र के नेताओं के लिए परीक्षा का समय है। यदि नेता सुरक्षा और खोया हुआ सम्मान दे पाते हैं तो मैं मानूँगी कि चौदहवीं शती के बड़शाह (सुल्तान जैनुलाबदीन) ने दुबारा जन्म लिया है।

33. सविता-आपका एक ओर उपन्यास है 'अपने-अपने कोर्णाक' जिसमें उड़ीसा के सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिदृश्य के साथ कुनी के माध्यम से सच की तलाश की गई है इस उपन्यास में आए पात्र क्या वास्तव में सच की तलाश कर पाते हैं और यदि हाँ तो सच को बयाँ करता यह उपन्यासल संस्कारों की रक्षा कहाँ तक कर पाता है ?

चन्द्रकांता-इस उपन्यास के आरंभ में मैंने जो कृष्णामूर्ति का कथन कोट किया है हर व्यक्ति का अपना-अपना सच होता है जिसकी वह तलाश करता है, कुनी अपनी यात्रा में जिस पड़ाव पर पहुँचती है वह उसका अपना चुनाव है। अन्य पात्र अपनी जीवनदृष्टि रखते हैं पर ज़रूरी नहीं सभी पारंपरिक लीक तोड़ कर अपने इच्छित लक्ष्य को पा सकें। उड़ीसा के लोग वहाँ के सांस्कृतिक स्थापत्य को दृढ़ता से सुरक्षित रखते आए हैं पर अब उनमें दरारें तो आ ही गई हैं, जैसे भारत के अन्य प्रदेशों में हुआ है।

34. सविता-आपका उपन्यास अपने-अपने कोणार्क उड़ीसा की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है, कश्मीर से उड़ीसा तक का लेखकीय सफ़र आपने कैसे तय किया ?

चन्द्रकांता-इसमें कोई शक नहीं है कश्मीर मेरी जन्मभूमि है और आप तो जानते ही हैं कि शुरुआती लेखन में आप अपने आसपास से ही प्रेरणा पाते हैं उन्हीं स्थितियों-परिस्थितियों से आप घनिष्ठता से जुड़ जाते हैं और वहीं से आपके अनुभव जन्मते हैं। ज्यों-ज्यों हमारी सोच का दायरा बढ़ जाता है हम अपने से बाहर आने लगते हैं, पूरी दुनिया को देखने लगते हैं। कश्मीर पर तो मैं काफी लिख चुकी थी। ये संयोग की बात है कि मुझे देश-विदेश में रहने का अवसर मिला, भारत के कई प्रांतों में मैं रही हूँ। उड़ीसा में छह-सात वर्ष रही, वहाँ का जो सांस्कृतिक परिवेश है, कला-कौशल है, वह मुझे बहुत अनूठा लगा। जगन्नाथ की भूमि बड़ी रोचक व प्रिय लगी, वहाँ धार्मिक आस्थाएँ तो हैं हीं किंतु वहाँ कुछ ऐसा भी है जिसने मुझे लिखने के लिए प्रेरित किया। वहाँ मुझे मेरी कथा की नायिका अपने-अपने कोणार्क की पात्रा कुनी मिली। अपने-अपने कोणार्क एक प्रतीकात्मक उपन्यास है, कोणार्क यहाँ प्रेम और ऊर्जा का प्रतीक है। वैसे तो वह कहानी एक स्त्री की अस्मिता की, उसके संघर्ष और निर्णय लेने की क्षमता की। स्त्री को केंद्र में रख कर लिखे गये इस उपन्यास में कुनी सामाजिक अंधविश्वासों, रूढ़ियों से लड़ती है और अपने निर्णय आप लेती है। इसकी पृष्ठभूमि में उड़ीसा का सांस्कृतिक परिवेश है। इसी प्रकार हैदराबाद की पृष्ठभूमि पर अकेली चारमीनार, किस्सा नारायण राव आदि कहानियाँ लिखीं। अब हरियाणा में रह रही हूँ तो इसकी पृष्ठभूमि पर लिख रही हूँ। तो ऐसा अवश्य होता है आप जहाँ रहते हैं वहाँ का वातावरण, वहाँ की संस्कृति वहाँ के लोग आपको अवश्य प्रभावित करते हैं और कहानी के पात्र बनते चले जाते हैं। हमारा अनुभव संसार तो मूलतः मानवीय व्यापार के इर्द-गिर्द ही जन्मता और पनपता है।

35. सविता-पिछले दिनों आपने लगातार दो आत्मकथात्मक संस्मरण 'मेरे भोज पत्र' और 'हाशिए की इबारतें' लिखे हैं आपको इन्हें लिखने की आवश्यकता क्यों महसूस हुई ?

चन्द्रकांता-'मेरे भोज पत्र' में मेरे निजी जीवन, मेरी रचना प्रक्रिया और मेरी भूमि से जुड़े हुए संस्मरण व आलेख शामिल हैं। यह पाठकों से मेरा आत्मीय संवाद है, शायद यह पुस्तक इसलिए लिखी गई कि जो कुछ भी मेरे उपन्यासों व कहानियों में नहीं आया वो मैं पाठकों के सामने बिना लाग-लपेट रख सकूँ । दरअसल हमारा अनुभव संसार कहानियों में खण्डों में व्यक्त होता है काफी कुछ कह चुकने के बाद भी बहुत कुछ अनकहा रह जाता है जो या तो संस्मरणों या आत्मकथ्य के माध्यम से व्यक्त हो पाता है। एक कारण यह भी है कि मेरे अनेक शोधार्थी मेरे व्यक्तिगत जीवन एवं रचना प्रक्रिया को जानने के लिए उत्सुक थे। इससे शायद मेरे विषय में उनकी कुछ जिज्ञासाओं का शमन हो सके।

36. सविता-'हशिए की इबारतें' में मुझे आपके बचपन से लेकर बहू बनने तक के सभी रूप दृष्टिगत होते हैं। आपने अप्रत्यक्ष रूप से स्वयं को अपने रिश्तों का खुलासा

भी किया है इन रिश्तों को खुलासा करते समय आप कितना तटस्थ रह पाई हैं ? क्या आप इस कृति के माध्यम से समाज को रिश्तों की अर्थवत्ता से परिचित करवाना चाहती हैं? या फिर समाज में स्त्री की स्थिति को दर्शाने का माध्यम है यह ग्रंथ ?

चन्द्रकांता-रचनाकार जब सही गलत का परीक्षण करता है, संबंधों का तटस्थ मूल्यांकन करता है तो निजी रिश्तों से ऊपर उठकर उस पीड़ित इकाई को केन्द्र में रखकर ही करता है। मैंने इन संस्मरणों में स्त्री समीक्षा नहीं की है, स्त्री जीवन की भौतिकी में भीतरी कैमिस्ट्री की दखलअंदाजी से बने गुट्ठिल व्यक्तित्व की कुछ गुत्थियों को खोलने की चेष्टा की है। बेटी, माँ, बहन, पत्नी, दादी, नानी के रोल निभाती स्त्री की सोच, आकांक्षाओं और स्वप्नों में सेंध लगाकर जानना चाहा है कि कई दशकों को पीछे ठेलते, प्रगति के तमाम सोपान पार करने के बाद, स्त्री से जुड़ी परिवर्तनकारी रीति-नीतियों और पुरुष वर्चस्व के अहम् पूरित सोच में कितना कुछ सार्थक बदलाव आ पाया है। घर-परिवार की धुरी स्त्री को क्यों केन्द्र में कदम जमाने से पहले ही बार-बार हाशिए पर ढकेली जाती है ? स्त्री को एक अस्तित्व संपन्न व्यक्ति के रूप में देखने की कोशिश है यह ग्रंथ।

37. सविता- इस आत्मकथात्मक संस्मरण में आपने घर-परिवार की धुरी स्त्री को बार-बार हाशिए पर क्यों धकेल दिया जाता है जैसे प्रश्नों को उठाया है क्या आपको लगता है कि आज से पचास वर्ष पूर्व पुरुष तथा आज के पुरुष की सोच में किसी प्रकार का परिवर्तन आया है ?

चन्द्रकांता-अन्तर तो आया है, पर गुणात्मक परिवर्तन में अभी सुधार की काफी गुंजाइश है।

38. सविता-चन्द्रकांता जी, हिंदी संत साहित्य के प्रवर्तकों में कबीर, गुरुनानक, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, रविदास आदि साहित्यकारों ने संपूर्ण भारतीय साहित्य को एक दिशा प्रदान की, क्या आज का साहित्य देश में किसी प्रकार की क्रांति ला सकता है या समाज को एक दिशा प्रदान कर सकता है ?

चन्द्रकांता-तुमने हिन्दी साहित्य के दिग्गजोंका नाम लिया है उनका प्रभाव भारतीय मानस पर आज भी देखा जा सकता है। वैसे भी कोई रचनाकार समय और स्थितियों के अनुरूप यथास्थितिवादी चित्रण नहीं करता, मनुष्य के हित में समय की विसंगतियों और विद्रूपों से मुठभेड़ करता है। चाहे वे कबीर हो या रविदास वह समाज में बदलाव चाहता है, व्यवस्था के प्रतिपक्ष में बैठकर समाज में चली आ रही गलत नीतियों का विरोध करता है। वह समाज में सुधार की अपेक्षा रखता है। लेखक लेखन के माध्यम से सामाजिक दायित्वों की पूर्ति तो करता ही है, पाठकवर्ग तक अपनी बात पहुँचा कर, उसके मन को प्रभावित भी करता है और उनकी सोच पर भी दस्तक देता है। लेखक समाज के लिए ही नहीं पूरी मानवता के हित के लिए प्रकारांतर से प्रतिबद्ध होता है। आज लेखक लेखन के माध्यम से समाज में क्रांति ला सकता है या नहीं पर ये तो मानी हुई बात है कि साहित्य मनुष्य की चेतना को विस्तार

देता है। साहित्यकार यह काम एक सर्जन डॉक्टर की तरह नहीं करता, ऑपरेशन किया और रोग दूर हो गया, उसका प्रभाव दूरगामी होता है। कहते हैं कि रूस की क्रान्ति के पीछे गोगोल और गोर्की जैसे महान साहित्यकारों का हाथ था। एलिज़ावेथ स्टो के उपन्यास 'अंकल टॉम्स केबिन' जो दासों की दुर्दशा पर द्रवित होकर लिखा गया था, उसे पढ़कर लिंकन बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने दास प्रथा को समाप्त किया। आज महाश्वेता देवी जैसी लेखिकाएँ लेखन के माध्यम से सामाजिक क्रान्ति के स्वप्न देखती हैं।

39. सविता-संत साहित्य के हिंदी में अनन्य हस्ताक्षर सार्वभौम क्रांति के विधायक, रहस्यवादी कवि कबीरदास तथा कश्मीर की संत ललद्यद की वाणी में आप कहाँ तक साम्य पाती हैं? तथा ललद्यद किस प्रकार की महिला संत थीं ?

चन्द्रकांता-कश्मीर की ललद्यद का जन्म 1335 ईसवी में माना जाता है, कबीर का जन्म तो बाद का है पर उन दोनों में कई स्तरों पर समानता नज़र आती है। ललद्यद वास्तव में एक शैव योगिनी थीं, उन्होंने जो वाक् कहे हैं उसमें शैव दर्शन का सार है, साथ ही उन्होंने समाज में घटित सामाजिक बुराइयों, दैनिक जीवन में जो कमियाँ हैं उस पर भी वाक् कहे। कबीर की भाँति उन्होंने भी कट्टर समाज के हिन्दुओं व मुस्लिमों के बाह्य आडंबरों, धार्मिक पाखंड का विरोध किया। मुझे उन दोनों के कथन में बहुत साम्य नज़र आता है। ललद्यद ने कहा कि यदि आपका मन मैला है तो व्रत-उपवास का कोई अर्थ नहीं। कर्म ही जीवन है, तभी तो कश्मीर में उनके द्वारा कहे गए वाक् घर-घर में गाए जाते हैं। कबीर की तरह ही साधना में लल्ली ने गुरु का महत्त्व माना पर जीवन में वे आध्यात्मिक ऊँचाइयाँ छू गई और गुरु से आगे निकल गई। अपूर्व साहस और बेवाक बयानी से उसने चौदहवीं शती की स्त्री-विमर्श के नए आयाम रचे। अपने मन और विचारों के अनुरूप जीवन जीया। उनका विवाह अवश्य हुआ किंतु गृहस्थ जीवन कभी नहीं अपनाया। वह मीरा की तरह ईश्वर के प्रेम में रंगी थी गृहस्थ जीवन कैसे जी लेतीं। शैव योगिनी और कश्मीरी भाषा की आदि कवयित्री होने के बावजूद ससुराल में उन्होंने एक आम स्त्री जैसे दुःख भोगे, पर आगे वे घर-गृहस्थी छोड़कर ईश्वर भक्ति में लीन हो गई। ये सब बातें भी उन्होंने अपने वाकों में कही हैं। इस प्रकार उनके वाकों में जहाँ एक तरफ गंभीर अद्वैत दर्शन है, वहाँ दैनिक जीवन की छोटी-छोटी बातें हैं। कश्मीर के अशांत वातावरण में जब हिंदू व मुसलमानों में दरारें आ रही थीं, तब उन्होंने कहा कि शिव सर्वत्र व्याप्त है, हिंदू व मुसलमानों में कोई भेदभाव नहीं है। अपने-आप को पहचानो। उन्होंने सामाजिक पक्ष भी रखा और आध्यात्मिक पक्ष भी, इसलिए घर-घर में प्रिय बनीं । ईश्वर की उन पर असीम कृपा थी। इसमें दोराय नहीं कि वह एक संत योगिनी तो थी हीं, एक भक्त कवयित्री और आत्मचेता स्त्री भी थीं। वर्ग, वर्ण, धर्म से ऊपर उठकर जीवन की अर्थवत्ता खोजने वाली लल्ली को इतिहास में जगह नहीं मिली। सदियों बाद बीरबल काचरू ने मजमू अल तवारीख (1835) में उसे अलौकिक और अव्यक्त सत्ता के लोक में विचरण करने वाली सती नारी कहा। तारीखे हसन के लेखक पीर गुलाम हसन ने-उसे खुदा के खास बन्दों में शुमार किया लेकिन कश्मीरियों के लोकमानस में वे सदा सम्मान व स्नेह पाती रहीं।

40. सविता-विखंडित संस्कृति के चौराहे पर खड़ी आज की युवा पीढ़ी को कथा के माध्यम से क्या संदेश दिया जा सकता है?

चन्द्रकांता-आज आधुनिकीकरण के जिस दौर में हम जी रहे हैं वहाँ एक तरफ तो तकनीकी और दृश्य-श्रवय माध्यम हमारी जीवन-शैली को प्रभावित कर रहे हैं, दूसरी ओर हमारी आंतरिक, सामाजिक-राष्ट्रीय व्यवस्था जन्य परिस्थितियों के कारण समस्याएँ इतनी बढ़ गई हैं कि आम आदमी भौंचक्क और परेशान है। वैश्विकरण ने तकनीकी प्रगति एवं सूचना संजाल से हमारे लिए जहाँ ज्ञान की नई खिड़कियां खोली हैं वहीं हमारी अपनी संस्कृति और नैतिक दृष्टि को आघात पहुँचा है। साहित्य में हम बदलते समय में नयी उभरती समस्याओं स्त्री-विमर्श, दलित और आदिवासी-विमर्श के रूप में स्त्री समस्याओं, शोषितों-पीड़ितों के द्वंद्वों, तकलीफों को आवाज़ तो देने लगे हैं, लेकिन धुंधलका इतना है कि कोई साफ रास्ता नज़र नहीं आता। दुर्भाग्य से हमारी प्रशासकीय नीतियाँ, आधुनिकीकरण के नाम पर, विश्व व्यापार और उदारीकरण ने नाम पर जो प्रगति के स्वप्न देख रहे हैं, वहाँ निर्धन ज़्यादा कमज़ोर और धनवान ज़्यादा सबल बनता जा रहा है। गलत व्यवस्था का विरोध करने का साहस क्षीण होता जा रहा है क्योंकि निजी स्वार्थ प्रबल हो रहे हैं। युवा पीढ़ी इस कठिन समय को जी रही है जहाँ एक ओर जगमगाते मॉल, बड़े कार्पोरेट संस्थान, लखटकिया नौकरियां हैं तो दूसरी ओर किसान आत्महत्या कर रहे हैं। बेकारी, बेरोजगारी बढ़ रही है। तमाम संवैधानिक अधिकार पाने के बावजूद स्त्री अभी भी दहेज के कारण जलाई जाती है। विज्ञापनी दुनिया में वस्तु बनकर बेची जा रही है। सांप्रदायिक उन्माद के कारण विस्थापन बढ़ रहा है। बिना विभाजन के स्वतंत्र राष्ट्र में लोग अपने पूर्व पुरखों की धरती से निष्कासित हो रहे हैं। यह सभी चिन्ताएँ लेखकों को हैं और होनी चाहिए। शोषण के सृजनात्मक विरोध में ही रचनाशीलता की सार्थकता है। साहित्य समाधान भले न करे पर स्थितियों के प्रति सचेत तो करता है और विरोध की मशाल जला सकता है।

41. सविता-उत्तर आधुनिकतावाद और उत्तर संरचनावाद पर काफी बहस हो रही है, आज के लेखन में साहित्य के शिल्प में भी काफी तोड़-फोड़ हो रही है साहित्य के लिए इसे आप किस हद तक ठीक मानती या उपादेय मानती हैं ?

चन्द्रकांता-कुछ वर्ष पूर्व उत्तर आधुनिकता और उत्तर संरचनावाद पर खूब बहसें हुई पर यह बहसें समीक्षकों ने की। बहुत कम रचनाकार इस बहस में शामिल हुए। जेनुइन रचनाकार तो समय में नई समस्याओं से रूबरू होते आमजन के संघर्षों, उसकी आकांक्षाओं और स्वप्नों के घात-प्रतिघात से उत्पन्न द्वन्द्व को संवेदी स्वर देता रहा है। कथ्य के अनुरूप शैली में भी बदलाव आ रहा है जो कि स्वाभाविक है। हाँ, कहीं-कहीं भाषा में इतनी तोड़-फोड़ हो रही है कि वाक्य संरचना अनर्गल होती जा रही है जिससे बचने की जरूरत है जो भी बदलाव हों, वे साहित्य की सीमा में हों,वही वाजिब हैं।

42. सविता-कथा आलोचना के प्रति आज अधिकतर रचनाकार असंतुष्ट हैं इस विषय में आप क्या कहना चाहेंगी ?

चन्द्रकांता-सविता, वास्तव में आलोचना रचना की पड़ताल कर उसके ढले-मुंधे कोणों को खोलती है, पाठकीय रुचि को जगाती है पर आज अधिकतर समीक्षाएं सतही या पूर्वाग्रह से ग्रसित हैं। कहीं कृति में निजी विचारधाराएं ढूँढनें की कोशिश, कहीं कृति की गहरी परख में आलस्य। इधर दो-एक पृष्ठ आगे-पीछे पलटकर फतवे देने की प्रवृति भी बढ़ी है। बेशक सभी कहानियाँ उच्चकोटि की नहीं होतीं। परंतु आज के अधिकांश टिप्पणीकारों में वह जीवन दृष्टि और परख की सामर्थ्य बहुत कम नज़र आती है जो नई कहानी के दौर के समीक्षकों में थी। रचना के प्रति ईमानदारी और अच्छी रचनाएँ खोजने का श्रम भी बीती बात लगती है। लेखक को समीक्षक की ज़रूरत होती है क्योंकि समीक्षक यदि उसकी कृति को तटस्थ होकर देखता है,उसके मर्म को समझता है तो वह लेखक के लिए भी नए गवाक्ष खोलता है। समीक्षा वस्तुत: कृति के सत्य का अन्वेषण है। समीक्षक का रचना में सृजनात्मक हस्तक्षेप ज़रूरी है। अपनी जीवन दृष्टि, साहित्यिक समझ और वस्तुनिष्ठ परख से वह रचना के नए अर्थ खोल सकता है।

43. सविता-साहित्यिक आलोचना के अतिरिक्त आजकल लेखकों पर व्यक्तिगत आरोप भी होते हैं उसको आप किस दृष्टि से देखती हैं ?

चन्द्रकांता-कुछ असफल और कुंठित लेखक ही ऐसा करते हैं उनके निराधार आरोप आक्रोश तो जगाते हैं, पर साथ ही उनके छोटेपन पर दया भी आती है।

44. सविता-हिन्दी साहित्य जगत में आजकल पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़-सी आ गई है क्या ये पत्रिकाएँ हिन्दी साहित्य जगत में अपना स्थान बना पाएँगी या फिर आकाश में छाए बादलों की तरह कुछ क्षण बरस कर लोप हो जाएँगे। कृपया यह भी बताइए कि आपकी सबसे अधिक पसंदीदा पत्रिका कौन-सी है और क्यों ?

चन्द्रकांता-दृष्य माध्यमों ने पढ़ने की रुचि भले कम कर दी हो पर खत्म नहीं कर सकी है। आज भी हमारी जनता अच्छी पुस्तकें, अच्छी पत्रिकाएँ पढ़ती है। तभी पत्रिकाओं की बाढ़ आई है। साहित्यिक पत्रिकाएँ यद्यपि संसाधनों की कमी के कारण समय से नहीं निकल पातीं पर जिनके पीछे संकल्पवान और कर्मनिष्ठ व्यक्ति है, वे समाज को समस्याओं के प्रति सचेत करते हैं, और अच्छा साहित्य देकर मानवीय संवेदना को बनाए रख कर मनुष्य के स्वप्नों आकांक्षाओं को बचाए रखती है। कई साहित्यिक पत्रिकाएँ पसन्द हैं नाम गिनाना ज़रूरी नहीं समझती।

45. सविता-आपकी किन-किन रचनाओं का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हुआ है? तथा आज अनुवाद की क्या स्थिति है?

चन्द्रकांता-मेरी कई कहानियों का अंग्रेज़ी, पंजाबी, डोगरी, कन्नड़, मलयालम, मराठी,

ओड़िया आदि भाषाओं में अनुवाद हुआ है। 'एलान गली ज़िंदा है' उपन्यास का अंग्रेजी में 'एस्ट्रीट इन श्रीनगर' के नाम से अनुवाद हुआ है। 'कथा सतीसर' उपन्यास का पंजाबी में अनुवाद हो चुका है और अंग्रेजी व मलयालम में हो रहा है। 'अर्थान्तर' और 'बाकी सब खैरियत है' का ओड़िया भाषा में अनुवाद हुआ है। अधिकांश प्रकाशक अनुवाद में ज़्यादा रुचि नहीं लेते। यही कारण है कि हमारे यहाँ भारतीय भाषाओं में बहुत अच्छे लेखक तो हैं किंतु अन्य भाषी उन्हें नहीं जानते, जो अंग्रेज़ी में लिखते हैं, उनके पाठक वर्ग का दायरा बढ़ जाता है, उनकी पहुँच विदेशों तक हो जाती है। मैं विदेशों तक की बात न भी करूँ किंतु इतना अवश्य चाहती हूँ कि भारत के विभिन्न प्रदेशों तक मेरी बात अवश्य पहुँचे।

46. सविता-हिन्दी कथा साहित्य ने प्रगति और विकास के जो सोपान तय किए हैं, उसमें अनेक मूर्धन्य साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने अपनी तरह से साहित्य के नए मानदंड स्थापित किए हैं, आप हिन्दी साहित्य में किन्हें कीर्ति स्तंभ मानती हैं ?

चन्द्रकांता-हिन्दी कथा साहित्य बहुत पुराना तो नहीं है लेकिन प्रगति के कई सोपान इसने पार किए हैं। उसमें अनेक मूर्धन्य साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने हमें कालजयी साहित्य दिया है। इसके स्तंभ तो बहुत से हैं पर मैं जिनकी रचना क्षमता से बहुत प्रभावित हुई हूँ उनमें प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा, प्रेमचन्द, यशपाल आदि प्रमुख हैं। विशेषकर, निराला की 'राम की शक्ति पूजा', जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी', प्रेमचन्द की 'गोदान', यशपाल का 'दिव्या', अमृतलाल नागर का 'नाच्यो बहुत गोपाल', श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी', भीष्म साहनी का 'मैय्या दास की माड़ी', कृष्णा सोबती का 'ज़िंदगीनामा' आदि कई रचनाएँ हैं। समकालीन रचनाकारों ने भी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ दी हैं, जो आज नहीं तो कल ज़रूर काल़जयी मानी जाएँगी। उनकी लंबी सूची है।

47. सविता-आपने 200 से भी अधिक एक से बढ़कर एक कहानियाँ लिखी हैं। आपको अपनी कौन-सी कहानी सर्वोतम लगती है ? कथा समग्र छपवाने के बारे में आपकी क्या योजना है ?

चन्द्रकांता-यह बहुत कठिन प्रश्न है जब मैं कोई चीज़ लिखती हूँ तो उस वक्त वह मुझे बहुत अच्छी लगती है पर बाद में समय बीतने पर लगता है कि मैं तो इससे भी अच्छा लिख सकती थी। मुझे लगता है कि यदि लेखक यह मान लेगा कि वह सर्वोतम लिख चुका है, तो वह आगे नहीं लिख पाएगा। उसके मन में यह भ्रम नहीं रहना चाहिए कि यह मेरी सर्वोत्तम कृति है। कुछ कहानियाँ तो हैं जिन्हें मैं बहुत पसंद करती हूँ, जैसे 'शरणागत दीनार्त', 'पोशनूल की वापसी', 'बदलते हालात में ', 'आवाज़', 'तैंतीबाई' आदि जिनके साथ बहुत नज़दीक से जुड़ी हूँ, किंतु सर्वोत्तम रचना कौन-सी है, निर्णय मैं पाठकों पर ही छोड़ती हूँ, यह अधिकार पाठकों का है कि वह मेरी किस रचना को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। शीघ्र ही मेरा समस्त कथा संचयन पाँच भागों में समय प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली से आ रहा है। इसके पहले खण्ड का शीर्षक-वादी, वितस्ता और संगरमाल है।

48. सविता-एक लेखिका के अतिरिक्त आप एक पत्नी और माँ भी हैं क्या लेखन कहीं परिवार के दायित्वों में आड़े आता है ।

चन्द्रकांता-लेखिका तो हूँ, एक पत्नी और माँ ही नहीं नानी-दादी भी बन गई हूँ। घर परिवार और आत्मीय संबंधों को मैंने कभी दूसरे पायदान पर नहीं रखा पारिवारिक और सामाजिक दायित्व निभाने में मैंने कभी कोताही नहीं की। कई शौक भी पाले-जीवन के हर पहलू को तहे दिल से जीने की कोशिश की । मेरे लिए कहानी लिखना जितना ज़रूरी है उतना ही नन्ही सिया, आर्या की तोतली बातें सुनना भी। नाती अनुभव से नए ज़माने के बदले मिजाज़ को समझना भी मुझे उल्लसित करता है । हाँ, लेखन जितना समय माँगता है उतना शायद दे नहीं पाई पर समय की कमी का रोना मैंने कभी नहीं रोया। जितना संभव हुआ किया आगे भी वक्त ने मुहलत दी तो ज़रूर करूँगी।

49. सविता-किसी भी रचना की पूर्णता पर आप कैसा अनुभव करती हैं ?

चन्द्रकांता-रचना पूरी होने पर संतुष्टि का भाव तो मन में उपजता है। यह भाव कुछ ऐसा भी होता है जैसे कोई अपनी बेटी का विवाह अच्छे घर में संपन्न कर संतुष्ट भी होता है और खाली भी। ये अनुभव मुझे 'यहाँ वितस्ता बहती है' और 'कथा सतीसर' उपन्यास पूर्ण होने पर बड़ी शिद्दत से हुआ।

50. सविता-निरंतर चालीस वर्षों से की जा रही सतत् साहित्य-साधना के उपरांत आपकी आगामी साहित्य संबंधी योजनाएँ क्या हैं ?

चन्द्रकांता-आगे एक उपन्यास शुरू किया है जिसमें चार पीढ़ियों को आधार बनाकर समय के बदलते स्वरूप और उसकी परिणितियों की पड़ताल होगी।

चन्द्रकांता जी, बाते तो बहुत हैं, पर आपका बहुत समय लिया आगे फिर कभी ! बहुत-बहुत धन्यवाद।

ooo

रिपोर्ताज

राजौरी में साहित्यिक-सांस्कृतिक संवाद

❐ कपिल अनिरुद्ध

दूरियां किसे परन्द होंगी ? कौन नहीं चाहेगा दूरियों को काटना। साहित्यकार तो वैसे भी विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों एवं जीवन पद्धतियों के मध्य सेतु निर्माण का कार्य करने वाला होता है। आज के इस दौर में जब संचार माध्यमों में आई क्रांति के बावजूद आपसी दूरियां बढ़ती चली जा रही हैं, व्यक्ति-व्यक्ति से दूर होता चला जा रहा है। पूरा विश्व एक छोटे से कसबे में, ग्लोबल विलेज में परिवर्तित होता जा रहा है। ऐसे में साहित्यकारों की मदद से विभिन्न भाषाओं के मध्य पसरी दूरियों को कम करने का प्रयास प्रशंसनीय तो होगा ही।

जम्मू-कश्मीर कला-संस्कृति एवं भाषा अकादमी का विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों के मध्य संवाद स्थापित करने का कार्यक्रम उस समय चरितार्थ हुआ जब राजौरी कसबे में अकादमी के सात दिवसीय लेखक समागम का शुभारम्भ हुआ। अकादमी की गतिविधियों को बड़े शहरों से छोटे शहरों तथा कसबों की ओर ले जाना भी एक चुनौतीपूर्ण प्रयास कहा जाएगा। पर्वत श्रृंखलाओं से घिरे राजौरी शहर का चुनाव तो हर दृष्टि से सराहा ही जाएगा।

जम्मू के पश्चिम में स्थित राजौरी, पुंछ, उधमपुर और जम्मू से घिरा हुआ है। इस ऐतिहासिक नगर का प्राचीन नाम राजपुरी है।

इस नगर में स्थित बाबा गुलामशाह विश्वविद्यालय, दुधाधारी मन्दिर और शहादरा शरीफ दर्शनीय पर्यटन-स्थल हैं। वैसे तो राजौरी शहर को घेरे हुए हर पर्वत श्रृंखला मनमोहक है तथा सहज ही यहां का वातावरण व्यक्ति के अशान्त एवं अस्थिर मन को स्थिरता एवं शान्ति प्रदान करने की क्षमता रखता है परन्तु विशाल हिमालय की पीरपंचाल श्रृंखला के चरणों में स्थित बाबा गुलाम शाह विश्वविद्यालय अपने सौंदर्य का जादू हर किसी पर चलाता दीख पड़ता है। शहादरा शरीफ तो साम्प्रदायिक सौहार्द का अनुपम उदाहरण है। खूबसूरत पर्वत शिखरों, घने वनों तथा हरे-भरे घास के मैदानों से घिरा साम्प्रदायिक सौहार्द का प्रतीक शहादरा शरीफ का ऐतिहासिक नाम सिंह हार है। थन्नामण्डी से पाँच किलोमीटर और राजौरी के उत्तर में 35 किलोमीटर की दूरी पर स्थित इस पावन स्थल का सम्बन्ध हजरत सैय्यद गुलाम शाह से रहा जो बड़े संत थे और धार्मिक प्रचारक के रूप में 1765 में इस गाँव में आये और वही ध्यान मग्न हुए।

---

*309 कर्नल कालोनी, तलाव तिल्लो बोहड़ी, जम्मू-180002 मोबाईल-9796480351

ऊँचाई पर स्थित विशाल दुधाधारी मन्दिर भी राजौरी कसबे की खूबसूरती को बढ़ाता है। इस मन्दिर के प्रांगण से पूरे राजौरी शहर की सुन्दरता का नज़ारा लिया जा सकता है।

इन पर्यटन तथा तीर्थ-स्थलों के पावन वातावरण के बीच साहित्यकारों कां आपसी आदान-प्रदान बौद्धिकता की ऊँचाइयों को छूने के साथ-साथ उन्मुक्त भावनाओं से भी ओत-प्रोत था। ऐसे में दूरियों का नज़दीकियों में परिवर्तित हो जाना एक सहज प्रक्रिया है। ऐसे में भाषाओं की दीवारें तो गिरनी ही थी। हमारा राज्य तो भाषाओं की विविधता के लिए जाना ही जाता है। हर भाषा अपनी कला एवं संस्कृति की वाहक तो होती ही है, भाषा भू-भाग विशेष के भूगोल, इतिहास आदि की परिचायक भी होती है। सात दिवसीय लेखक समागम में हिन्दी, डोगरी, कश्मीरी, पहाड़ी, गोजरी, पंजाबी तथा लद्दाखी के साहित्यकारों ने भाग लिया। इस कैम्प में डोगरी का प्रतिनिधित्व श्री दर्शन दर्शी एवं डॉ. उषा व्यास ने किया। कश्मीरी का गुलाम नवी 'आतिश' ने, उर्दू-फ़ारुक मुज़तर,गोजरी-चौ. नसीम पुन्छी, पहाड़ी-अज़ीम इक़बाल, पंजाबी-भूपेन्द्र भार्गव, लद्दाखी-शरिंग वोरजी तथा हिन्दी का प्रतिनिधित्व कपिल अनिरुद्ध ने किया। 16 से 22 मार्च तक चलने वाली इस कार्यशाला का आयोजन हिमालयन वितस के सहयोग से हिमालयन कॉलेज के प्रांगण में किया गया।

कार्यक्रम का शुभारम्भ हिमालय कॉलेज के सभागार में हुआ। अभिनंदन समारोह की अध्यक्षता जिला अध्यक्ष राजौरी जयपाल सिंह ने की जब कि इस अवसर पर विशेष अतिथियों के रूप में निस्सार राही, आज़म शाह और कुलदीप राज गुप्ता मौजूद थे। इस अवसर पर एक सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन भी हुआ जिस में उर्दू, पहाड़ी और गोजरी की रचनाओं पर आधारित एक सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया गया। अपने गायन द्वारा अश्विनी, परवेज मलिक, अश्फाक मीर एवं मास्टर करतार चंद ने सब को भाव-विभोर कर दिया। इस से पूर्व इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए अकादमी के सचिव डॉ. ज़फ़र इक़बाल मन्हास ने कहा कि 15 वर्ष की अवधी के उपरान्त आयोजित किए जा रहे इस कैम्प का मुख्य ध्येय विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों के मध्य पसरी दूरी को दूर करना है। और जो भाषायी विविधता हमें बांटती है उसे अपनी शक्ति बनाना है। उन्होंने प्रदेश की एकता हेतु कार्यशाला के प्रतिभागियों के एक जुट हो कार्य करने का आह्वान किया। इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त करने वालों में चौ. गुज़ार खताना, फ़ारुक मुज़तर, फ़ारुक मिर्ज़ा, निस्सार राही तथा अलमदार शाह भी शामिल थे।

17 मार्च से हिमालयन कॉलेज के समागम में विभिन्न साहित्यकारों में संवाद का सिलसिला आरम्भ हुआ। पहले सत्र में यह निर्णय लिया गया कि हर साहित्यकार अपने साहित्य एवं साहित्यिक सफर का विवरण प्रस्तुत करेगा तथा इस दिशा में सर्वप्रथम कश्मीरी भाषा के प्रख़्यात साहित्यकार गुलाम नवी 'आतिश' ने अपने आलोचनात्मक कार्यों के साथ साथ अपने अन्य रचनात्मक कार्यों की जानकारी सांझी की। 1949 में जन्में गुलाम नवी आतिश को सोवियत लैंड पुरस्कार के साथ अनुसंधात्मक एवं आलोचनात्मक निबन्धों पर आधारित पुस्तक

'बाज़फायत' के लिए वर्ष 2008 का साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिल चुका है। इस परिचयात्मक बातचीत में आतिश साहब ने कश्मीर के लोक-गीतों एवं लोक-कथाओं पर आधारित अपने समीक्षात्मक कार्य का विवरण प्रस्तुत करने के साथ-साथ डोगरी भाषा की विभिन्न विधाओं के विकास क्रम की जानकारी डोगरी के दर्शन दर्शी एवं डॉ. उषा व्यास से प्राप्त की।

इस अवसर पर उर्दू का प्रतिनिधित्व कर रहे एवं इस कार्यक्रम के आयोजन हेतु अकादमी का सहयोग कर रहे फारूक मुज़तर साहब ने अपनी संस्था हिमालयन विल्स के लक्ष्य से सब को परिचित करवाया। मुज़तर साहब विभिन्न समारोहों, पत्र एवं पत्रिकाओं के माध्यम से विभिन्न सम्प्रदायों एवं धर्मों में सामजस्य पैदा कर राष्ट्रीय एकता एवं जनजागृति का अभियान चलाते आ रहे हैं। उनका मानना है कि धर्म के वास्तविक एवं मूल स्वरूप को प्रतिष्ठित किए बिना सामाजिक समरसता एवं कौमी एकता के लक्ष्य को कदापि प्राप्त नहीं किया जा सकता। उन के द्वारा स्थापित हिमालयन एजूकेशन मिशन का उद्धेश्य मानवीय मूल्यों की स्थापना के साथ-साथ लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विस्तार करना है। उन्होंने यह भी जानकारी दी कि हिमालयन विल्स का निर्माण आज से दो वर्ष पूर्व क्षेत्र के चिन्तको, बुद्धिजीवियों और लेखकों को मंच प्रदान करने तथा समकालीन दार्शनिक विचाराधाराओं पर विचार-विमर्श करने हेतु किया गया था ताकि सामाजिक समस्या से ओत-प्रोत समाज का निर्माण किया जा सके। मुज़तर साहब ने अपने मौलिक चिन्तन द्वारा तो सब को रोशन किया ही साध ही उन्होंने अपनी और अपने मिशन की मेहमान नवाज़ी द्वारा सभी साहित्यकारों का दिल जीत लिया। उनके मिशन के पुस्तकालय में विभिन्न भाषाओं की साहित्यिक एवं धार्मिक पुस्तकों ने मन का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। भाषाओं के इस संगम में सांझी संस्कृति का परिचायक यह पुस्तकालय भी भुलाया नहीं जा सकता।

सब जानते हैं जम्मू-कश्मीर राज्य अपनी भाषायी विविधता के लिए जाना जाता है। यह कहना उचित होगा कि हमारा राज्य विभिन्न भाषाओं तथा संस्कृतियों का संगम है। तीनों मुख्य क्षेत्रों यानि जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख की संस्कृतियां तथा भाषायें भिन्न हैं तथा यही विविधता हमारी शक्ति भी है। डोगरी भाषा का प्रतिनिधित्व कर रहे साहित्यकार दर्शन दर्शी को वर्ष 2006 के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। इनका एक ओर काव्य संग्रह 'संञां झांकन दोआरी दोआरी' भी प्रकाशित हो चुका है। डोगरी कविता एवं गज़ल में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाने वाले दर्शी जी का डोगरी उपन्यास भी हाल ही में छप कर आया है तथा शीघ्र ही इन का अंग्रेजी उपन्यास भी प्रकाशित होने वाला है। साहित्यिक आदान-प्रदान के दौरान उन्होंने बसोहली में बिताए अपने उस बचपन तथा जवानी के वातावरण का वर्णन किया जिस ने उन्हें साहित्य सृजन हेतु प्रेरित किया। उनकी आधुनिक भाव-बोध से ओत-प्रोत डोगरी कविताओं को भी खूब सराहा गया। अपनी रचनाओं को लद्दाखी एवं कश्मीरी के साहित्यकार बन्धुओं तक पहुँचाने हेतु उन्होंने हिन्दी अनुवादक की भूमिका भी खूब निभाई।

इस आदान-प्रदान में डोगरी का ही प्रतिनिधित्व कर रही डॉ. उषा व्यास ने भी उस वातावरण की एक खूबसूरत झलकी प्रस्तुत की जिस ने उन के भीतर साम्प्रदायिक सौहार्द, धार्मिक सहिष्णुता के साथ-साथ उर्दू, हिन्दी तथा डोगरी भाषा के प्रति प्रेम का बीज रोपित किया। अनेक वर्षों तक अपनी प्रतिभा द्वारा हिन्दी शीराज़ा के सम्पादन को कुशलता से निभाने वाली इस रचनाकार ने साहित्यिक परिचर्चा के दौरान अपने अनुवाद कार्य से भी सब को अवगत करवाया और कुछ उत्कृष्ट एवं पुरस्कृत अनुवाद कार्य को पढ़ कर भी सुनाया।

बहुत कम लोग लद्धाख की कला, साहित्य एवं संस्कृति से परिचित होंगे। लद्धाख के एक साहित्यकार का इस कांफ्रेस में उपस्थित होना एक नवीन प्रयास था। शरिंग दोरजी ने अपनी कविताओं में बौद्ध-लामाओं की पावन धरती के सौंदर्य को इतनी खूबसूरती से बांधा था कि सभी स्वयं को लद्धाख में महसूस करने लगे। लद्धाख की कला एवं संस्कृति के सम्बन्ध में प्रश्नों का होना स्वभाविक ही है। सभी प्रतिभागियों की जिज्ञासा को शरिंग दोरजी ने अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में बड़ी कुशलता से शान्त किया।

राजौरी में पहाड़ी भाषा बोलने वालों की संख्या सब से अधिक है। हालांकि यहाँ डोगरी, कश्मीरी, गोजरी और कश्मीरी भाषा के लोग भी अच्छी संख्या में हैं। इस साहित्यिक संगम में पहाड़ी भाषा का प्रतिनिधित्व मोहम्मद अज़ीम खान ने किया। 17 अप्रैल 1946 को जन्मे मोहम्मद अज़ीन खान भारतीय सेना से सेवानिवृत होने के उपरान्त भारतीय स्टेट बैंक में भी कार्य कर चुके हैं। टंगमर्ग कश्मीर के निवासी अज़ीम खान को उन के काव्य संग्रह 'गन्दल' के लिए अकादमी की पहाड़ी भाषा की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक का ईनाम मिल चुका है। इस के अतिरिक्त इन्होंने 'तारीखे हसन भाग दो' का पहाड़ी से फारसी में अनुवाद भी किया है। इस समय 'अज़ीम' दुलीनामा के इतिहास के साथ-साथ इल्में अरूज पर भी किताब लिख रहे हैं। इस संगोष्ठी में पहाड़ी के इस साहित्यकार ने लय-ताल बद्ध अपनी रचनाओं द्वारा खूब वाह-वाही लूटी।

गोजरी भाषा के साहित्यकार चौ. नसीम पुंछी ने इस रचनात्मक परिचर्चा के दौरान अपनी साहित्यिक यात्रा का न केवल परिचय दिया बल्कि गोजरी भाषा के विकास क्रम से भी सब को परिचित करवाया। इसी बीच पंजाबी कें व्यंग्य कवि भूपेन्द्र सिंह भार्गव ने अपनी व्यंग्य रचनाओं का पाठ कर खूब वाह-वाही लूटी। उनकी रचनाओं में हास्य का पुट तो था ही पर समाज के कटु यथार्थ पर तीखा व्यंग्य भी था। कपिल अनिरुद्ध की हिन्दी कविताओं को भी खूब सराहा गया। उनकी कहानी 'सोने की बिल्ली' पर भी खुल कर चर्चा हुई तथा उनके इस प्रयास को सराहा भी गया।

सात दिवसीय इस शिविर में सूत्रधार की भूमिका निभाने वाले पहाड़ी के रचनाकार डा. मिर्जा फ़ारुक अनवार ने न केवल सभी भाषाविद्वों के मध्य सम्पर्क स्थापित करने हेतु संचालक की भूमिका निभाई बल्कि अपनी पहाड़ी रचनाओं के द्वारा सब को आनन्दित भी किया। अपनी पुरस्कृत पहाड़ी पुस्तक 'चानन' के लिए चर्चित रहे पहाड़ी के इस रचनाकार

ने अकादमी का प्रतिनिधित्व करते हुए सब साहित्यकारों के मध्य सामजस्य स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सात रोज़ा इस शिविर में विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों ने अन्तर्भाषायी अनुवाद के द्वारा क्षेत्रीय साहित्य को देश की प्रमुख भाषाओं हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी इत्यादि में अनुदिक कर पूरे देश में पहुँचाने की अनिवार्यता पर बल दिया। सभी ने एक मत से अकादमी की कार्यप्रणाली को और बेहतर बनाने हेतु निम्नलिखित सुझाव भी दिये।

1. राज्य की उत्कृष्ट कृतियों के अनुवाद कार्य के प्रकाशन हेतु भी आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाई जाये।
2. अनुदित पुस्तकों को भी राज्य स्तर के पुरस्कार हेतु नामांकित किया जाये।
3. प्रदेश की पुरस्कृत पुस्तकों को ऑन लाइन करने का भी प्रबन्ध किया जाये।
4. अनुवाद हेतु कार्यशालाओं का आयोजन किया जाये।

आज के इस दौर में जब अपनी भाषा के प्रति प्रेम दूसरों की भाषा के प्रति ईर्ष्या एवं द्वेष भरने का काम कर रहा है। जब निज भाषा का मोह विभिन्न खेमों तथा गुटबन्दियों को जन्म दे रहा है। ऐसे में मुझे सारथी जी का यह कथन सहज ही स्मरण हो आता है- ''भाषा तो मात्र अभिव्यक्ति का माध्यन है। भाषा साध्य नहीं साधन है। भाषा तक ही सीमित रहना ठीक नहीं। वास्तविक बात तो उस अनुभूति की है जो कुछ अभिव्यक्त करेगी। एक अच्छी रचना चाहे किसी भी भाषा में लिखी जाये पढ़ने वाले को प्रभावित अवश्य करेगी।''

उपरोक्त कथन की अनुभूति सात दिनों के इस साहित्यिक-सांस्कृतिक संगम में सब को हुई होगी ऐसा मैं विश्वास से कह सकता हूँ। भाषाओं के इस आदान-प्रदान में जिस सांझे दुख-दर्द को सांझी समस्याओं को, सांझे विचारों, भावों तथा चिन्तन को हम सब ने अनुभूत किया उसे व्यक्त करने में शब्द स्वयं को बौना महसूस करते हैं। समापन समारोह पर व्यक्त सभी बुद्धिजीवियों के विचार इसी ओर संकेत कर रहे थे । अकादमी के सचिव एवं साहित्यकार ज़फ़र इक़बाल मन्हास का भाषाओं की रंगारंग वाटिका देखने का स्वप्न साकार हो ऐसी हमारी सब की कामना है।

०००

नवांकुर

इक सपना

❑ रमणीक सिंह

सामने पड़ा इक फ्रिज होगा
इधर रखा एक टीवी होगा
नीचे फरश चमकता होगा
ऐसा सपना बैठ किसी कोने में
कोई-न-कोई तो बुनता होगा ।
उधर पड़ा वो सोफा होगा
बीच में काँच का टेबल होगा।
बच्चे मेरे खेले जहाँ
मेरी बीवी का सपना होगा।
सुख-चैन, खुशियों से भरा
जीवन का हर इक पल होगा
दही दूध पनीर प्याज़ संग पड़ा वो भोजन होगा
खाकर मैं भी तृप्त होऊंगा
मेरा दिल फिर गदगद होगा।
ऐसा सपना बैठ किसी कोने में
कोई-न-कोई तो बुनता होगा।
सुन्दर सा घर, आंगन में उसके, खड़ी सुन्दर सी गाड़ी होगी
मां बाऊजी रहेंगे चैन से, खत्म बेबसी लाचारी होगी
संग, माँ बाप , बीवी बच्चों के, मेरा सुखी परिवार जो होगा
वही मेरा किसी कोने में, बैठ बुना, सच वैसा सपना होगा।

०००

संस्मरण

बाबा आदम और बल्गारिया की राधिका

❒ संतोष श्रीवास्तव

बल्गारियन शायरा ब्लागा दिमित्रोवा की नज़्म है-

एक पेड़ था
जिस पर सूरज रहा करता था
वो कुल्हाड़े से काट दिया गया
और उसका कागज़ बना लिया गया
अब उसी कागज़ पर
मैं उस पेड़ की गाथा लिख रही हूँ
जिस पर कभी सूरज का क्याम था

डोरा ने घबराकर अपने सामने पलँग पर फैले काग़ज़ समेट लिए हैं। क्या इत्तिफाक़ है। डोरा भी बल्गारिया से ही आई है उड़ीसा के आदिवासियों पर शोध करने। उसकी सूची में वे आदिवासी इलाके हैं जो हमारी दुनिया से लगभग कटे से हैं। एकदम अलग....थलग.......अपने ढंग का जीवन जीते, अपने ढंग की दुनिया रचते। कल शाम ही हम जगन्नाथपुरी से आये हैं। मैं, डोरा, उड़ीसा के आदिवासी इलाकों की जानकारी रखने वाले मिश्राजी, संजीव और डोरा का बल्गारियन दोस्त आरसोव। आरसोव बहुत अच्छा गिटार बजाता है। वह अपने साथ अपना गिटार भी लाया है। डोरा और आरसोव की हिन्दी ने मुझे हैरत में डाल दिया है ''डोरा, तुम तो इतनी अच्छी हिन्दी लिख-पढ़ लेती हो फिर मेरी क्या ज़रूरत है ?'' मैंने कोणार्क एक्सप्रेस में मुम्बई से भुवनेश्वर जाते हुए पूछा था।

''तुम हिन्दुस्तान की लेखिका हो। जितनी गहराई से तुम उन जगहों के बारे में मुझे बताओगी वह मेरे शोध में सहायक होगा।''

उस वक्त आरसोव ने जिस रोमांटिक अंदाज़ में डोरा की ओर देखा था वह उसके गिटार की कोई सधी हुई धुन की तरह था जिसे वह हर वक्त बजाता रहा हो।

जगन्नाथपुरी से सुबह नौ बजे फूल बनी की ओर रवाना हुए। ज्यों-त्यों जीप आगे बढ़ती जंगल की सघनता भी बढ़ती जाती। अजीबोगरीब नामों वाले आदिवासी गाँव पड़े....खुरदा,

* 102, सद्‌गुरु गार्डन तरुन भारत सोसाइटी निकट बी.एम.सी. स्कूल चकाला, अँधेरी (पूर्व) मुम्बई-400099
मो. 09769023188

बेगुनिया, राजसुनखला, इटामती, नयागढ़, दासपल्ला........धान के खेत-ही-खेत। खेत के अंत में बड़ा-सा तालाब जिसमें मजंटा रंग के कमल के बेशुमार फूल खिले थे। मैंने इस रंग के कमल पहली बार देखे। पूरा तालाब कमल के फूलों का गलीचा नज़र आ रहा था। डोरा फूलों को देखकर बच्चों जैसी मचल पड़ी। मिश्रा जी ने जीप रुकवाई। फूल तोड़ना आसान न था। कीचड़, दलदल भी हो सकता था पानी में....वहीं एक उड़िया मज़दूर सिर पर लकड़ियों का गट्ठर लिये जा रहा था। मिश्रा जी के हाथ में पाँच रुपये का नोट देख कर उसने कीचड़-कांटे की परवाह नहीं की और दौड़ पड़ा कमर-कमर तक पानी में.......तीन-चार फूल कमलनाल सहित डोरा के हाथों में थे........जाने क्यों मुझे कालिदास की शकुंतला याद आ गई।

बेगुनिया गाँव की दुकानें अशोक और केले के पत्तों के खंभों से सजीं थीं। गोबर से लिपी-पुती देहरी....गोवर्धन पूजा की याद दिला रही थी। अब घना जंगल सामने है लेकिन जीप जिस सड़क पर चल रही है वह अभी भी डामल की पक्की सड़क है....लेकिन रास्ता ऐसा घुमावदार कि सूरज सुबह भी आसमान के बीचो-बीच था और शाम को भी....यह कैसा विचित्र एहसास था। फूलबनी में मिश्राजी ने हमारे रहने का प्रबंध होटल हिल-व्यू में किया था। छोटे-छोटे एक पलंग-भर समाए, ऐसे कमरे.....लेकिन सुविधाजनक.....इस जंगल में ऐसी सुविधा जुटाना काबिले तारीफ़ था। चाय का थर्मस और कांच के गिलास लिये जो लड़का आया उसने पूछने पर बताया, ''जी साहब...मोटर वाले साहब आते हैं इधर खूब दिन रुकते हैं'' भोत बक्शीश मिल जाती है।

फूलबनी चूँकि एक खूबसूरत जंगली इलाका है ज़िन्दगी की भागदौड़ से आठ-दस दिन आराम से गुज़ारे जा सकते हैं यहाँ। शायद इसी उद्देश्य से यह होटल बनाया गया है।

डोरा कवयित्री है और आरसोव भूत-प्रेत में विश्वास रखता है। मिश्रा जी और संजीव तो सोने चले गये लेकिन हम तीनों देर तक जागते रहे। वह रात फूलबनी के सन्नाटे में भूत-प्रेतों की कहानियों से जहाँ एक ओर डरावनी होती गई वहीं डोरा की कविताओं ने उस सन्नाटे को मुखर कर दिया...। यह कविता मेरे देश के महान नेता गेओरगी दिमितरोव को समर्पित है....दिमितरोव तुम्हारे देश के गांधी की तरह थे....1933 में जर्मन नेशनल कांग्रेस की इमारत को जला देने के इल्ज़ाम में हिटलर ने उन्हें गिरफ़्तार कर लिया था। पर वह इल्ज़ाम झूठा था.....तमाम देशी-विदेशी ताकतों के कड़े विरोध के बाद उन्हें रिहा किया गया। 1944 में बल्गारिया की फासिस्ट हुकूमत से आज़ाद कराने वाले हमारे प्यारे नेता दिमितरोव 1952 में खुद की ज़िन्दगी से आज़ाद हो गये। उनका मृत शरीर विज्ञान की मदद से आज भी सुरक्षित है और वे आज भी हमारे दिलों में ज़िन्दा हैं.....॥

डोरा की आँखों में जलती मोमबत्ती की चमक है और मैं याद कर रही हूँ.......लेकिन किसे ? और क्यों ? क्यों आज भी हम कश्मीर के संकट से मुक्त नहीं हुए हैं ? क्यों आज भी देश सांप्रदायिकता की कट्टरता में स्वाह होता जा रहा है......और क्यों आज भी हम मुक्त नहीं हुए हैं गुलामी के बचे-खुचे अवशेषों से........डोरा की आँखें झपकने लगी हैं लेकिन फिर भी आरसोव गिटार बजा रहा है। कैसी कशिश है उसकी उँगलियों में और डोरा की आँखों में।

ऊबड़-खाबड़ पथरीले रास्तों से जहाँ तक जीप जा सकती थी गई....फिर पैदल सफर का लंबा सिलसिला शुरू हुआ। घने, जंगलों के एकदम भीतर, पहाड़ों की तराई में हैं आदिवासियों के झोंपड़े.....गिनती में कुल बासठ। घासफूस के झोंपड़ों की मिट्‌टी...गोबर से लीप-पोतकर, दीवारों पर खड़िया मिट्टी और गेरू से फूल, पत्ती, जानवर उकेर कर खूबसूरत बनाया गया है। इन झोंपड़ों में रहने वाले आदिवासी बौन, सौरा कुटिया कहलाते हैं। इनकी भाषा कुटिया और कांधा भाषा कहलाती है। फूलबनी गाँव का सरपंच हमारे साथ है और उसे कांधा और कुटिया दोनों भाषाओं का ज्ञान है। वह आदिवासियों और डोरा के बीच दुभाषिये का काम कर रहा है। डोरा के कंधे पर टँगे झोले में नोटबुक के साथ एक टेपरेकॉर्डर भी है जो लगातार चल रहा है...सब कुछ टेप करता हुआ। मिश्रा जी की जेब रास्ते में तोड़े हुए आंवलों से भरी है। वे आंवले खाते जाते हैं और बोतल से घूँट-घूँट पानी पीते जाते हैं----''ऐसा करने से प्यास नहीं लगती।''

''लेकिन मौसम तो जाड़ों का है न ?'' मेरे कहने पर झेंपते हुए कहते हैं कि-''नहीं, सरपंच बता रहे थे।''

हमें आता देख कुछ आदिवासी औरतें दरवाज़ों के पीछे से झाँक रही हैं। एक हँसती हुई सामने आती है...सांवला गुदाज़ बदन ठोड़ी पर गुदना गुदवाया हुआ...घुटने तक साड़ी, ब्लाउज़, नदारद। वह इशारे से मुझे और डोरा को बुलाती है और किवाड़ से अंदर रसोई की ओर ले जाती है। गोबर लिपी रसोई में मिट्टी का चूल्हा जल रहा है और उस पर आधे फूटे घड़े से रेत भरे एक औरत मके की लाई फोड़ रही है। फूली-फूली मकाई इधर-उधर छिटकती है तो पास रखे ताड़ के पत्ते से उन्हें सूप में सकेल लेती है। दोने में सबके लिये मका की लाई निकाल वही लड़की एक दोना मुझे एक डोरा को पकड़ाती है....गरम-गरम लाई से हथेली तपने लगती है पर ऐसा स्वागत मन को भा जाता है...डोरा ने कई तस्वीरें खींच डाली उनकी। साँवली सलोनी लड़की की मकाई के दानों-सी शुभ्र हँसी देर तक टकोरती रही मुझे। लड़कियों के लिए इस तरह दोने में गर्म मका की लाई खाना उत्सव के समान था। मुखिया के घर के आँगन में तीन-चार चट्टाने हैं। डोरा समेत हम सब चट्टानों पर बैठ गये। मुखिया किवाड़ की देहरी पर। बिछाने को कुछ नहीं है इनके पास...न खाट, न दरी...खजूर के लम्बे नौकदार पत्तों से बनी चटाई पर घर के मर्द सोते हैं औरतें गोबर लिपी ज़मीन पर बिना कुछ बिछाये ही सो जाती हैं।

''आपके यहाँ शादी की क्या रस्में हैं ?'' डोरा हिन्दी में पूछती है जवाब कांधा भाषा में ही देता है मुखिया....फूलबनी का सरपंच दुभाषिये का काम बखूब निभा रहा है।

'' तीन तरह से शादी तय होती है। जब हमारे उत्सव वगैरह होते हैं और उसमें

युवक अपनी पसंद की युवती का हाथ पकड़ ले और फिर भी कोई विरोध या मारपीट न हो तो शादी तय मानी जाती है। दूसरे तरीके से ऐसे कि लड़की एक महीने तक अपनी पसंद के लड़के के परिवार में रहती है। अगर पसंद आ गई तो दूसरे ही दिन शादी कर डालते हैं। तीसरा तरीका है लड़की का बाप लड़के के बाप के सामने शराब की बोतल रख कर उसकी रज़ामंदी पूछता है। अगर वह रज़ामंद है तो बोतल खुल जाती है और जश्न मनाया जाता है। शादी में औरत-मर्द दोनों शराब पीते हैं। रात-भर औरतें शराब पीकर शादी के मंडप में झांगड़ी नाम का नृत्य करतीं हैं। कोई भी उत्सव हो उसमें झांगड़ी नाच ज़रूर होता है।

मुखिया हमें अपना गाँव घुमाने ले जाता है। पतली, सँकरी गलियों के दोनों ओर बने झोंपड़े, पानी के कुएँ, बराली देवी का मंदिर...गांव की देवी बराली और देव बालास्कुम्पा..मंदिर के बाजू में चबूतरे पर बलि चढ़ाई जाती है। भैंस या बकरी की।

"भैंस की बलि।" मैंने आश्चर्य से सरपंच की तरफ देखा।

"आगे तो सुनिए मैडम...और भी रोमांचकारी।" सरपंच का स्वर सपाट था पर रहस्य से भरा भी।

"भैंस हो या बकरी...मंत्र-तंत्र के बल पर खुद ही वधस्थल तक आ जाती है...मंत्रों से बिंधी खड़ी रहती है, हिलती-जुलती तक नहीं। फिर उसकी पूजा आरती करके बाँस से बने तीर चलाकर उसकी भेंट बराली देवी को चढ़ाई जाती है।"

डोरा ने सिहरते हुए बलि का बड़ा पत्थर, वह खंभा जिससे बलि पशु को मंत्र पढ़ते हुए बाँधा जाता है और लोहे का बना वधस्थल सबकी तस्वीरें खींची।

"मंदिर में नीच जात का प्रवेश नहीं ।"

"नीच जात ? मतलब ?"

"गाँधी जी जिन्हें हरिजन कहते थे।"

मिश्रा जी ने डोरा को समझाया।

"इन आदिवासियों में भी हरिजन होते हैं ?" मैंने चकित हो पूछा।

"इनमें नहीं होते..पर अड़ोस-पड़ोस के गाँव से आ जाते हैं। जब वे आते हैं तो उन्हें कथागार में रहना पड़ता है। कथागार क्लब हाउस है आदिवासियों का।"

कहते हुए मुखिया पक्के चबूतरे पर बने पक्के बड़े हॉल में हमें ले जाते हैं। हाल तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ हैं। फूस का छप्पर और गेरू पुती दीवारें।

"यहां वह महीने-भर रहता है। जब मुखिया उसका चाल-चलन परख लेता है तो उसे रहने की स्वीकृति मिल जाती है। तब पंचायत बुलाकर उसे पंचों को पान सुपारी देनी पड़ती है। यह बाजू में डिंडाघर है। कथागार से आठ दस फलाँग की दूरी पर......अगर एक गाँव

से दूसरे गाँव में शादी तय होती है तो डिंडाघर में जवान लड़की महीने-भर तक रहती है। लड़का आता है और उसे यदि लड़की पसंद आ जाती है तो शादी तय मानी जाती है। एक लड़के के नापसंद करने पर समझो पूरे गाँव के लड़कों की इंकारी, फिर उसे कोई पसंद नहीं करता और वह डिंडाघर से अपने गाँव वापिस लौटा दी जाती है।''

ओह, बड़ी अ़जीब स्थिति होती होगी तब, कितनी अपमानित होती होगी वह.....मैंने सोचा था कि आदिवासियों में स्त्री-पुरुष इक होते होंगे पर.....पढ़े-लिखे सभ्य शहरी से लेकर काला अक्षर भैंस बराबर इन असभ्य कहे जाने वाले आदिवासियों तक औरतों की एक ही दशा।

''अगर औरत मर्द में न पटे..और औरत दूसरी शादी करना चाहे तो पूर्व पति को मात्र शादी में खर्च...होने वाली रकम की भरपाई कर छुटकारा मिल जाता है। फैसला पंचों को बता दिया जाता है। पंच पूर्व पति को रकम का भुगतान करवाकर कथागार में एक बैठक बुलाते हैं जिसमें दोनों घरों के बुजुर्ग मौजूद रहते हैं। दोनों पक्षों के बुजुर्गों से किसी फलदार वृक्ष की टहनी तुड़वाकर सम्बन्ध विच्छेद करा दिया जाता है और यह मान लिया जाता है कि अब दोनों पक्षों में तिनका-भर भी रिश्ता नहीं रहा।''

हम यह तो जानते थे कि आदिवासियों के अपने कानून होते हैं, जिसका पालन करना पूरे आदिवासी समाज का कर्त्तव्य है। डोरा इनके दंड-अपराध के कानून भी जानना चाहती थी पर चलते-चलते हम थक गये थे, भूख भी लग आई थी। घने बरगद के नीचे बने परकोटे पर हम सब बैठ गये। मिश्रा जी ने कॉफी से भरे थर्मस और सैंडविच जीप से मंगवा लिए। दोपहर के तीन बजे हैं पर ठंड झुरझुरी पैदा कर रही है। आसपास जंगलों और पहाड़ों से उतर कर ठंड इस आदिवासी अंचल को जैसे बर्फ़ीला बनाने पर तुली है। कॉफी का हर घूँट बदन को हलकी-सी गरमाई जरूर दे रहा है पर पल-भर की ही। एक घंटे के आराम के बाद मुखिया और सरपंच हमें ले जाते हैं कामनाघर की ओर....कामनाघर आदिवासियों की जेल है एक तरह से। कामनाघर के सामने ग्राम देवता बालास्कुम्पा का मंदिर और यज्ञकुंड है। यज्ञकुंड के ऊपर दो बल्लियों से मज़बूत बाँस बँधा है। जब कोई आदमी अपराधी सिद्ध हो जाता है तो यज्ञकुंड की अग्नि प्रज्वलित कर उसे इस बाँस पर उल्टा लटका दिया जाता है । थोड़ी ही देर में वह आग की तपिश से खून की उल्टियाँ करने लगता है तब उसे ले जाकर कामनाघर में डाल देते हैं।

''अरे बाप रे, मर जाता होगा बेचारा।'' इस बार संजीव ने मौन तोड़ा।

''अपराधी कहीं मरता है....आठ-दस दिन भूखा-प्यासा रखा जाता है उसे....तब वह शुद्ध हो जाता है। फिर उसे क्षमा मिल जाती है बालास्कुम्पा देव से।''

''तुमने एक बात नोट की ?'' मैं डोरा से कहती हूँ..''यह लोग दंड देते समय न तो अपराधी को हाथ लगाते हैं और न जानवर की बलि देते समय छुरे आदि को। सब काम मंत्र-तंत्र के बल पर ही करते हैं।''

''विश्वास नहीं होता....क्या मंत्रों में इतनी शक्ति होती है ?'' कहते हुए डोरा की आँखों में आश्चर्य और भय एकसाथ तैर आता है। वह विषय बदलते हुए मुखिया से पूछती है...''आप लोग त्योहार कौन से मनाते हैं ?''

''सभी। लेकिन सबसे बड़ा त्योहार है मकर संक्रांति। मकर संक्रांति के इक्कीस दिन पहले से यात्रा शुरू होती है। दूर उस सामने वाले पर्वत पर हमारे ग्राम देवता का जागृत मंदिर है। वहाँ तक यात्रा की जाती है। नाचते गाते हुए, मशाल जलाए सभी वहाँ जाते हैं लेकिन बालास्कुम्पा मंदिर का पुजारी नहीं जाता। वह मंदिर में आसन लगाकर इक्कीस दिन बैठा रहता है और उसकी हथेली पर खाद-मिट्टी डालकर धान बो दी जाती है। यात्रा समाप्त कर जब सब लौटते हैं तब तक हरी-हरी धान उग आती है। यह यात्रा मकर संक्रांति के दिन समाप्त होती है। अपनी हथेली पर उगी धान की एक-एक पत्ती वह सभी तीर्थ यात्रियों को देता है जिसे ले जाकर वे अपने घरों के किवाड़ों में खोंस देते हैं। कहते हैं फिर हैजा, मलेरिया, बड़ी माता के रोग से छुटकारा मिल जाता है। मकर संक्रांति के दूसरे दिन से कच्चे आम खाना शुरू हो जाता है। आम यहां बहुत अधिक पैदा होता है। चावल, मका की खेती होती है लेकिन पूरे गाँव में चाय बिना दूध की पीने का चलन है।''

शाम घिर आई है। सन्नाटा भी पसरने लगा है....अब आदिवासी औरतों का हमें देखने का जोश भी खत्म होता जा रहा है। धीरे-धीरे घरों के किवाड़ बंद होने लगे हैं। मुखिया विदा लेता है हमसे...चेताता है..''सम्हालकर जाइए..शेर, चीता हैं इन जंगलों में।''

सरपंच बेगुनिया गाँव की ओर पैदल ही निकल जाते हैं। इस वादे पर कि कल जल्दी आ जायें। दूर पहाड़ों के ऊपर जाना होगा न, इसीलिये।

जीप धान के खेतों के बीचों-बीच बने गेस्ट हाउस के सामने आकर रुक जाती है। गेस्ट हाउस की देखभाल करने वाले अवतार सिंह हमारा ही इंतज़ार कर रहे हैं। बिजली नहीं है यहां। पैट्रोमेक्स के उजाले में गेस्ट हाउस जगमगा रहा है। हम सब फ्रेश डाइनिंग रूम में आ जाते हैं। डोरा और आरसोव कोन्याक पी रहे हैं। संजीव और मिश्रा जी की मौजूदगी में भी मानो सिर्फ अपनी ही दुनिया में खोये हुए..पूरे सफर के दौरान आरसोव ख़ामोश रहा।

''मेरा प्रश्न मौजूद है..भूत-प्रेतों के बारे में आदिवासियों के विश्वास को लेकर।'' वह डोरा की कोन्याक पीने से रक्तिम आँखों में डूबते हुए कहता है।

''कल पूछ लेना।'' डोरा निश्चिंतता से जवाब दे रही है। मेरे वहाँ आते ही चारों मानो मेरी मौजूदगी में सिमट से जाते हैं। संजीव पीता नहीं है..मिश्रा जी को आरसोव ने पेग बनाकर दिया है कोन्याक का। डोरा धीरे-धीरे अपनी लिखी कविता गुनगुना रही है। बाहर घना होता कोहरा धान के खेतों और मेड़ों पर लगे आम के दरख़्तों, लताओं को अपनी बाहों में समेट रहा है। अवतार सिंह मेज पर गर्म-गर्म मटर-आलू की सब्ज़ी, मक्के की मोटी-मोटी मक्खन लगी रोटियां, मिर्चों का आचार और एक प्लेट में प्याज़, टमाटर काटकर रख जाते हैं।

''ल्यो जी, गर्म-गर्म खा लो मिनटों में ठंडा हो जाता है।''

मेरे लिए वह सब छप्पन भोजन जैसा मज़ा दे रहा था। आरसोव पूरी मिर्च एकसाथ खा गया और हॉट-हॉट चिल्लाता आँखों से आँसू बहाने लगा। डोरा की हंसी थम ही नहीं रही थी।

सुबह दस बजे तक कोहरा रहा। कोहरे को चीरती जीप में बेचैनी से टहलते सरपंच जी लपक कर बैठ गये। आज डोरा ने काला कोट, पैंट पहना था और सिर पर हैट लगाया था। हैट से बाहर निकले उसके सुनहरे बाल मके के भुट्टों के सुनहरी रेशों जैसे लग रहे थे। रेशमी और सरसराते से। हम धवणीखोल गाँव की चढ़ाई चढ़ने लगे। पैदल ही। काफी चढ़ाई थी। जंगल घना, तमाम इमारती लकड़ियों वाले पेड़। पगडंडियों के किनारे-किनारे सीताफल, रामफल, चंपा, कचनार के पेड़। धूप का नामोनिशान नहीं था। कहीं-कहीं तो पेड़ों पर अजगर जैसी मोटी-मोटी लताएं लिपटीं थीं। कोई परिंदा पर फड़फड़ाता तो ख़ामोश जंगल सहम-सा जाता। कल इटामती गाँव के मुखिया ने शेर, चीते से सावधान रहने को कहा था। आज भयानक जंगल मानो एहसास करा रहा था कि शेर नज़दीक ही कहीं है। हमारे साथ फूलबनी के वनकर्मी बंदूक लिये चल रहे थे। बता रहे थे कि-मैडम, आप दूरबीन से देखते रहिए पेड़ों की फुनगियों को। अभी तो मौसम है पक्षियों के यहाँ आकर डेरा डालने का। बड़े रंग-बिरंगे पक्षी आते हैं यहां।

अब हम दूरबीन आँखों से लगायें तो चलें कैसे ? रूकें, तब देखें न । यही दुविधा डोरा भी महसूस कर रही थी।

''ये लोग इतने बीहड़ इलाके में रहते हैं, सरकार कुछ करती नहीं इनके लिये ?'' मैंने सरपंच से पूछा।

''करती क्यों नहीं ? इन्हें इन्दिरा आवास दिये थे रहने को पर ये रहें तब न ? खाली घर छोड़कर फिर से चले गये धबणीखोल''

अपनी ज़मीन मुश्किल से छूटती है लेकिन उसके लिये आदमी सुविधाएं भी त्याग दे सुनकर अजीब लगा। आदमी तो समझौतावादी होता है, माहौल के अनुरूप अपने को ढाल लेता है।

करीब डेढ़ घंटे की चढ़ाई और जंगल के बाद आता है धवणीखोल। मुखिया गाँव के मुहाने पर ही मिल जाता है जहाँ बराली देवी और गिरी देवता का मंदिर है। गिरी याने पहाड़...कृष्ण के वृंदावन को गोवर्धन गिरी पूजा जाता है। यहां गिरी के साथ-साथ धरती, सूरज और वर्षा को भी पूजा जाता है। पहली वर्षा की फुहारें इनके लिये उत्सव के समान हैं। हमें आया देख धबणीखोल में रहने वाले कुल सत्रह झोंपड़ों में से औरतें, मर्द, बच्चे बाहर निकल आये। औरतें बिना, ब्लाउज़ की..गोदना गुदवाई हुई...शर्मीली और आँखों में चकित हिरणी

सा भाव लिये। हम जहाँ-जहाँ, जिन-जिन पगडंडियों से गुज़रते सब-के-सब साथ हो लेते। कुछ समाधियाँ देख हम ठिठके। मुखिया ने बताया-"जो चेचक से मर गये ये उनकी समाधियां हैं। उनके शव को जलाया नहीं जाता, दफ़नाया जाता है। चेचक, मलेरिया, हैजा तीनों बीमारियों से मरे लोगों को दफ़नाया जाता है।"

समाधियों को चूने से पोता गया था। लगभग एक किलोमीटर दूर उन सत्रह घरों से अलग-थलग था मुखिया का घर। चारों और फल और सब्ज़ियां लगीं थीं। एक लाल सा पत्ता मुखिया ने तोड़कर हथेली पर रगड़कर सूंघने को कहा। डोरा की हथेलियों पर मेंहदी-सी रच गई। आरसोव ने उसकी हथेलियाँ सूंघने के बहाने चूम लीं। मैंने नज़रअंदाज़ करते हुए जब अपनी हथेली पर पत्ता रगड़ कर सूंघा तो अनानास जैसी खुशबू आई-"यह क्या है ?"

"गंगा शिवड़ी का पत्ता। जब मलेरिया होता है तो इसे खाते हैं ठीक हो जाता है।"

"हाँ...क्यों नहीं, मरता वही है जिस पर भूत चढ़ जाता है।" अब की आरसोव चौंकन्ना हुआ-"भूत-प्रेत मानते हैं आप लोग।"

"क्यों नहीं मानेंगे ? भूत, प्रेत, डायन, चुड़ैल..सब होती हैं। कौन नहीं मानता इन्हें। पर इन्हें साधकर रखना पड़ता है। नहीं तो गाँव-के-गाँव खा जाते हैं ये। अभी दस रोज पहले ही तो एक औरत पे डायन आ गई थी। एक बच्चे को खा गई वह। सबने उसे पत्थर मार मार कर मार डाला।"

मैं सिहर उठी। जिस आदिवासी की औरत को पत्थरों से मारा गया था। वह पेड़ से टिका सिर झुकाये खड़ा था। उदास खामोश। ओह, कितने भयानक अंधविश्वास है इनके ? और कितने भयानक कानून। न जाने कब सुबह होगी यहाँ।

उस सुहावनी सब्ज़ी बाड़ी को पार कर हम सब मुखिया के घर के अंदर खजूर से बनी चटाइयों पर जाकर बैठ गये। मुखिया की पत्नी, लड़कियां तेंदू के पत्तों से दोने बना रही थीं। पंद्रह दिन में एक बार गाँव के मर्द, औरतें इन पत्तों के बने दोनों को, लकड़ियों के गट्ठरों को, फल, सब्जी और धान को फूलबनी के बाज़ार में जाकर बेचते हैं। धान के खेत हैं यहां पर कम..कुवेरी, बिरी, कांगली, जोना आदि मोटे अनाज को यहां जंगलों में आग लगाकर उगाया जाता है। वही भोजन है इनका। जंगलों में आग लगाकर ये वर्षा का इंतज़ार करते हैं और फिर बरसती बूंदों से नम हुई धरती पर इन बीजों को बोते हैं। ये पूरी तरह वर्षा पर निर्भर हैं। वर्षा के लिये ये बराली देवी को बकरी की बलि चढ़ाते हैं। जब कभी शादी-ब्याह के लिये साहूकार से कर्ज़ की ज़रूरत पड़ती है तो बदले में उसके खेतों पर काम करना पड़ता है। आदिवासी गाँवों में आज भी बाटा पद्धति है। चावल दो बदले में शक्कर, गुड़ लो।

धवणीखोल में केवल कुटिया आदिवासी ही रहते हैं। महुआ से बनी शराब और धांगड़ी लोकनृत्य इनके जश्न का साधन है। नृत्य रात-भर चलता है। जब कोई उत्सव हो या फिर शादी-ब्याह। डोरा के लिये वनकर्मियों ने विशेष रूप से नृत्य का आयोजन किया था। लड़के-लड़कियों ने मिलकर ढोल की थाप पर नाचा। लड़कियों का दल कमर से झुका घंटों एक ही मुद्रा में नाचता रहा। इस बार डोरा वीडियो कैमरा लाई थी। मुखिया के घर से हमारे लिये मिट्टी के सकोरों में काली चाय और डलिया-भर मका की लाई भिजवाई गई। डलिया तेंदू के पत्तों को जोड़कर बनाई गई थी। नाच की समाप्ति के बाद मुखिया हमें अपनी आयुर्वेद की जड़ी-बूटियों की बाड़ी दिखाने ले गया। पर्वत पर सीढ़ीदार बाड़ी में जड़ी-बूटियों की क्यारियाँ-''इन पत्तों को बिच्छू के काटे पर मलते हैं, इसकी डंडियों का रस साँप के काटे पर...यानी जंगल में जितने ज़हरीले कीड़े-मकौड़े...सबका इलाज बाड़ी में मौजूद। बस, इलाज नहीं है तो इनके दिन-फिरने का..सभ्य होने का, अंधविश्वासों से उबरने का.. ''

रात गेस्ट हाउस में कोन्याक पीते हुए डोरा बता रही थी-''मैं छे महीनों से भारत में आदिवासियों पर काम कर रही हूँ। बिहार, छत्तीसगढ़, बस्तर, झारखंड, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के आदिवासियों को करीब से देखा। पर उड़ीसा के इन आदिवासियों की प्रथाओं में मुझे बहुत कुछ ऐसा मिला जो सभ्य-समाज तक अभी पहुँचा नहीं है।''

''क्या इनमें अफेयर भी होता है ? मुझे नहीं लगता।'' आरसोव ने घूंट भरते हुए कहा।

''क्यों नहीं...प्यार हो हर जात, हर ओहदे, हर कौम में होता है। तुम अपने देश के डाकू का प्रेम भूल गये ? मुस्तफ़ा डाकू का जो अपनी प्रेमिका राधिका के संग वादियों में प्रेम के आगोश में दुनिया से कूच कर गया था। मुस्तफ़ा और राधिका बादशाह के सिपाहियों के द्वारा मारे गये थे। और डोरा वह लोक-गीत गुनगुनाने लगी जिसमें मुस्तफ़ा और राधिका के प्रेम का वर्णन है।

''लेकिन राधिका नाम तो भारतीय है? क्या बल्गारिया में भी लड़कियों का नाम राधिका रखा जाता है ?'' मेरे पूछने पर डोरा खिलखिला पड़ी-''राधिका मेरे देश का नाम है, अगर मैं कहूँ तो ?''

''क्या तुमने कृष्ण कथा पढ़ी है? राधिका उनकी प्रेमिका थी...हज़ारों वर्ष पहले यह द्वापर युग की कहानी है।''

''कहानी नहीं सत्य घटना। कृष्ण तो पूरे विश्व के हैं। चौंसठ कलाओं से युक्त पूर्ण पुरुष। कृष्ण केवल भारत के नहीं है, हाँ, ये बात और है कि उनका जन्म मथुरा में हुआ।'' मैं सोच में पड़ गई हूँ..मैं कृष्ण के भारत में जन्म लेने के लिये गर्व महसूस करूँ या अपनी अज्ञानता पर शर्मिन्दा हो जाऊं। डोरा कितना जानती है और मैं कितनी मूर्ख..

''कृष्ण अपनी राधा संग विश्व के कोने-कोने में जा बसे हैं। पूरा विश्व हरिमय है।''

मेरे और डोरा के बीच एक रिश्ता कायम हो गया। कृष्ण प्रेम से उपजा रिश्ता। वह वादा करती है जब वह अपने देश लौटेगी तो मुझे कभी नहीं भूलेगी..भले ही मैं दोबारा उससे न मिल पाऊं। कृष्ण भी तो राधा से बिछुड़कर फिर कभी नहीं मिले फिर भी राधा उनके साथ रही हमेशा।

अभी भोर छिटकी ही थी कि अवतार सिंह की चाय हाज़िर।

''अरे, इतनी जल्दी ?''

''दोपहर तक डोरा मैडम के लिये सरकारी जीप आप जायेगी तो सोचा आप लोग जल्दी उठ लें और मेरे हाथ के बने छोले-भटूरे खा लें।''

और अवतार सिंह अपनी पगड़ी ठीक करते गायब। डोरा और आरसोव भी अँगड़ाई लेते उठ गये चाय पीने। जानती हूँ डोरा और मेरा यहीं तक का साथ है। आज वह भुवनेश्वर लौट जायेगी और मैं चिलका लेक देखने चली जाऊंगी। डोरा के लिये पूरी सरकारी व्यवस्था है उड़ीसा के मुख्यमंत्री नवीन पटनायक की ओर से क्योंकि वह उनके प्रदेश के आदिवासियों पर शोध करने आई है। उड़ीसा गरीब राज्य माना जाता है। फिर आदिवासियों का जीवन तो वैसे भी अभावों से भरा है। आदिवासी कभी बाहर की दुनिया से कोई सरोकार नहीं रखते। उनका अपना जंगलमय संसार है। अपने कानून, अपने देवता। अपने मौसम, अपने देवता, अपने जादू-टोने, तंत्र-मंत्र...हमसे वे कुछ नहीं चाहते। अगर चाहते हैं तो किलो भर चावल के बदले मुट्ठी-भर नमक या एक भेली गुड़....

डोरा को छोले इतने पसंद आये कि उसने अवतार सिंह को अपनी घड़ी उतार कर तोहफ़े के तौर पर दे दी। तभी सरपंच ने बताया....''मैडम, वो डायन के आदमी ने पहाड़ से छलाँग लगा दी...घाटी में सुबह से उसी की लाश खोजी जा रही है।''

''क्या ?'' मैंने घबराकर डोरा की ओर देखा। वह भी सकपकाई-सी सरपंच का मुँह ताके जा रही थी।

''जिसका बेटा बुखार से मर गया था, उसके पति के साथ डायन करार दी गई औरत का प्रेम चलता था। बेटे की माँ अपने छः वर्ष के बेटे की मौत का बहाना ले उसकी लाश उस औरत की दहलीज़ पर रख शोर मचाने लगी कि यह औरत नहीं डायन है...कल इसने मेरे बेटे को कुछ खिलाया था जिससे उसे बुखार आया और वह मर गया।'' यह सुनकर गाँव वालों ने उसे घर से बाहर घसीट कर पत्थरों से कुचलकर मार डाला। उसी के ग़म में उसके युवा पति ने आत्महत्या कर ली।

डोरा उत्तेजित हो गई। उत्तेजना में भी उसकी आँखें डबडबा आईं। सरपंच, मिश्राजी और संजीव कमरे से बाहर चले गये थे और मेरे मन में आँधी कुलबुला रही थी...चाहे मनुष्य उजड्ड, गँवार रहे, चाहे पढ़-लिख कर अफ़लातून बन जाये प्रेम का जहां किस्सा छिड़ता है...अंत यही होता है। वह आदिवासी युवक कल बहुत उदास, अनमना दिखा था मुझे। उसका

सुखचैन उसके अपने ही समाज ने छीन लिया था उससे ? और अपनों द्वार ठगा जाना आदमी को ज़िन्दा लाश बना देता है।

सरकारी जीप आ गई थी। डोरा विदा ले रही थी। उसने मुझे ढेरों सौगातें दीं...कपड़े ज़ेवर की नहीं। प्रेम, विश्वास की, अपनी कवितायों की, और उस सुनहले पलों की जो मैंने उन आदिम इलाकों में घूमकर उसके साथ गुज़ारे जो दुनिया की नज़रों में घने जंगल हैं लेकिन जिनके खूब भीतर आदिवासी समाज साँस लेता है। घृणा, प्रेम, नफरत, ममता, लगाव....सभी भावनाएं तो हैं उनमें। जैसे मुझमें, डोरा में, आरसोव में। डोरा पढ़-लिख गई है तो उनकी दुनिया जानना चाहती है, अपने ज्ञान का विस्तार करना चाहती है....पर वे नहीं चाहते अपने से बाहर की दुनिया को जानना क्योंकि शायद वो जानते हैं कि आदिवासी युवक के द्वारा की गई आत्महत्या और उसकी पत्नी की हत्या उस नफ़रत से अलन नहीं है जिस नफ़रत के कारण सात समंदर पार बल्गारिया में मुस्तफ़ा और राधिका की हत्या की गई।

०००

गज़ल

❒ बी.एस. सुमन अग्रवाल

मेरी हर रात का, सुख चैन चुराने के लिये
ख़्वाब आते हैं, मेरी नींद उड़ाने के लिये।

घर के आँगन में था, एक पेड़ बुजुर्गों जैसा
काट डाला गया, दीवार उठाने के लिये।

हर घड़ी कत्ल किया जाता है, सच्चाई का
सिर्फ एक झूठ को, मजबूत बनाने के लिये।

दर्द को किस लिये, अफ़साना बना रक्खा है
दर्द का गीत है, ज़ख़्मों को सुलाने के लिए

तुमने क्यूं रख दिये, घबरा के सभी तीरे-ज़फा
लीजिये, दिल मेरा हाज़िर है निशाने के लिये।

ऐन मुमकिन है, मेरे घर से ही होगी शुरुआत
दोस्त आए तो हैं, बस्ती को जलाने के लिये।

ए 'सुमन' वक़्त का सिक्का, तो वही सिक्का है
वक़्त पर काम जो आता है, भुनाने के लिये।

०००

रात-कुछ कविताएँ

❐ डॉ. दरखशां अंदराबी

(1)

रात अपने चरखे पर
पूरी रात कातती है अंधेरा
और बुनती है प्रकाश की एक-एक किरण
सूर्य पूरे दिन
उसी रोशनी पर इतराता है

(2)

स्वयं को जब
रात की गहराई को सौंपा
मेरा सूर्य
मेरे संग
मेरे पलंग पर सोया मिला

(3)

पूरी रात
मेरी नींद सोती है
और रात जागती है

(4)

रात एक सिद्ध मलंग है
किसी के विरह में घूमती
नंगधड़ंग चहूँ ओर
सुबह मलंग की कुटिया है

(5)

रात की आवाज़ें दंबाली-गाण नहीं हैं
बल्कि ऋचायें
जिनका उच्चारण/पूर्ण-वज़ू के बाद किया जाता है

हर सूरत
चाहे जपमाला हो या नर्म-बिस्तार

(6)

आओ
हम एक-दूसरे की प्यालियों में
उंड़ेल दें एक-दूजे की रात
बूंद-बूंद
और जी भर पी लें
तुम्हारी आंखों में मेरी सुबह खिलेगी
और मेरी आंखों में तुम्हारी

(7)

वह सुबह की सीढ़ी पर
दामन फैलाये
मांग रहा था ईश्वर के नाम पर....
मैंने दान की अपनी आधी रात
अर्धरात्रि मैंने देखा
वह चन्द्र-अश्व पर सवार
मुझे लेने आया था

(राथः सथ नज़्मअ)

हिन्दी अनुवादः सतीश विमल

०००

(डोगरी कहानी)

अहिल्या

❒ मूल एवं अनुवाद : डॉ. शिवदेव मन्हास

यह पौराणिक कहानी तो आपने सुनी होगी कि इंद्र ने छल कर के गौतम ऋषि की अनुपस्थिति में अहिल्या के सतीत्व को भंग किया था। क्लंकित तो वह हुआ था दुनिया में, पर गौतम और अहिल्या जितना मानसिक संताप नहीं झेला था उसने। शायद यही कारण है कि आज भी रिश्तों के मुखौटे लगाए इंद्र जैसे लोग संसार में विद्यमान है, जो अवसर मिलते ही किसी निर्दोष को क्लंकित कर देते हैं और गौतम-जैसे लोग ऐसे लोगों की कारस्तानी पर सारी उम्र घुटते, कुढ़ते और टूटते रहते हैं।

आप सोच रहे होंगे कि इस पौराणिक कहानी का मैं क्यों वर्णन कर रहा हूं ? सो, मेरे पाठको ! मेरी इस कहानी की कथावस्तु और पात्र भी कुछ-कुछ इससे मेल खाते हैं। मैंने तभी तो अपनी कहानी के पात्रों का नामकरण भी वैसे ही किया है।

गौतम और अहिल्या का हाल ही में विवाह हुआ था। अहिल्या के बड़े जीजा इंद्र ने दोनों को पहली बार अपने घर भोजन पर आमंत्रित किया। इंद्र और इंद्र की पत्नी ने अहिल्या को अपने घर में कुछ दिन तक रुकने का निवेदन किया। गौतम ने स्वीकृति दी तो अहिल्या अपनी बहन के घर रुक गई। गौतम को सुबह अपने दफ्तर भी जाना था। इसलिए वह शाम ढलते ही अपने घर लौट आया।

अगले दिन सुबह जब वह घर से दफ्तर के लिए निकलने लगा तो ठीक उसी समय अहिल्या को आया देख गौतम हैरान रह गया। पूछने पर अहिल्या ने बताया कि उसकी तबीयत कुछ ठीक नहीं है।

अहिल्या को आठवां महीना चल रहा था। इसलिए गौतम अस्वस्थता की बात सुन कर परेशान हो उठा। कुछ अनिष्ट न हो जाए-यह सोच कर गौतम ने उसी पल उसे अस्पताल ले जाने की सोची।

लेडी डॉक्टर ने अहिल्या का मुआइना करके गौतम को बच्चे के ठीक-ठाक होने की सूचना दी। साथ ही कहा कि भविष्य में वह अहिल्या से 'बोल-चाल'[1] न करें। गौतम तो पहले ही चार माह से 'बोल-चाल' बंद कर अलग कमरे में सो रहा था।

---

1. शरीरक संबंध

गौतम ने लेडी डॉक्टर की हिदायत को अधिक गंभीरता से नहीं लिया। पर घटना के दो साल बाद अहिल्या के मुख से स्वयं ही बात निकल गई- इंद्र की अपनी बेटी भी लगभग अहिल्या की आयु की थी और वह अहिल्या को भी रानी बेटी कह कर संबोधित करता था। फिर यह सब कैसे हो गया ? गौतम की समझ से बाहर की बात थी।

अहिल्या ने सारी घटना गौतम को सुना दी-

इंद्र का घर। एक बड़ा कमरा, जिसमें चार चारपाइयां बिछी हुई हैं। इंद्र, इंद्र की पत्नी, उनकी बेटी और अहिल्या-चारों सोये हुए हैं। रात के दो बजे अहिल्या की नींद खुलती है। इंद्र अपनी चारपाई पर पांव लटकाए बैठा है। और सोई हुई अहिल्या को घूरे जा रहा है। अहिल्या उसकी आंखों में उतर आई वासना की लाली को भांप लेती है। वह सिहर उठती है ओर भय से आंखें बंद कर लेती है। इंद्र चारपाई से उठता है। बल्ब बुझाता है और अहिल्या की चारपाई पर आ जाता है-

अहिल्या के मुख से इंद्र की कारस्तानी सुनकर गौतम भड़क उठता है पर अहिल्या गौतम के गुस्से को शांत करती है- रोकती है और प्रलय होते-होते टल जाती है।

समय बीतता है और समय के साथ-साथ गौतम अपने भीतर कुछ टूटता हुआ-सा महसूस करता है। उसे लगता है कि उसके मन में अहिल्या के प्रति प्रेम रूपी शीशे में दरार पड़ गई है। वह शायद, अहिल्या को पहले जैसा प्यार नहीं दे पा रहा है। इंद्र के प्रति उसके मन में बेशुमार नफ़रत इकट्ठी हो गई है। उसे डर है कि इंद्र के सामने आते ही कहीं वह आपे से बाहर न हो जाए।

यहां पहुंचते-पहुंचते मेरी कहानी हांफने लगी है। मुझे लगता है कि कहानी में से कुछ छूटता जा रहा है, जिसे मैं अनुभव कर सकता हूं, मगर शब्दों में व्यक्त नहीं कर पा रहा हूँ। कहानीकार लाख चाहे मगर फिर भी वह अपने पात्रों के भीतरी, द्वंद्व को न तो पूरी तरह से समझ पाता है और न ही व्यक्त कर पाता है। क्योंकि यह सब उसका भोगा हुआ यथार्थ नहीं होता और वैसे भी सभी पात्रों को भीतर-बाहर से यकसां समझना व्यक्त करना असंभव-सी बात है। यही कारण है कि अधिकतर कहानीकार अपनी कहानी का एक ही पक्ष-तस्वीर का एक ही पहलू प्रस्तुत कर पाते हैं। पर मैं इस चीज से परहेज़ करना चाहूंगा। इसलिए मैं अपने पाठकों और आलोचकों को कुछ देर के लिए कहानी में भटकाने लगा हूं। मेरे तीनों प्रमुख पात्र कुछ कहना चाहते हैं। शायद, अपने बयान देना चाहते हैं। आइए यथार्थ जानने के लिए उन्हें भी पढ़ लें। शायद, मेरी कहानी में छूटते हुए तथ्यों की कुछ पूर्ति हो जाए।

'मैं अहिल्या हूं। इंद्र कभी भी मेरे लिए आकर्षण का केंद्र नहीं रहा। मैंने उसके गैर-मुनासिब मज़ाक को कभी भी गंभीरता से नहीं लिया। क्योंकि, जीजा और साली के बीच मज़ाक चलता ही रहता है। शायद, इसी के सबब से ही यह घटना घटी। लेकिन, दुख इस बात का है कि मुझे न तो इंद्र ही समझ सका और न गौतम। एक ने मुझे भोग की वस्तु बनाया, तो दूसरे न निजी संपत्ति। क्या इसके अतिरिक्त मेरा कोई अस्तित्त्व नहीं है ? एक ने मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे भोगा और दूसरे ने मेरे बेकसूर होने पर भी मुझे दोषी माना। मैंने मानसिक पीड़ा दोनों से अधिक झेली है। सामाजिक मूल्यों की गिरावट के लिए हमेशा नारी को ही क्यों कसूरवार माना जाता है ? यदि पुरुष-प्रधान समाज नारी को अपनी निजी संपत्ति ही समझता है तो भी मैं बे-कसूर हूं। किसी बेजान चीज़ को अगर कोई चोर-उचक्का मौका पाकर चुरा ले तो इसमें गुनाहगार कौन होगा ? बेजान चीज़ या उसे चुराने वाला। मुझे सिर्फ इतना ही कहना है।'

'मैं गौतम हूं-अहिल्या का पति। मेरी नज़रों में दोनों दोषी हैं। अहिल्या ने मेरे विश्वास को तोड़ा है। वह इंद्र को बहुत पहले से जानती थी क्योंकि वह उसका जीजा था। यदि वह उसके कहने पर उसके घर न रुकी होती, तो यह घटना ही नहीं घटती। क्या वह उसे उसके परिवारजनों-पत्नी और बेटी के सामने ही नंगा नहीं कर सकती थी ? इतनी बड़ी घटना को पूरे दो साल तक मुझ से छिपाए रखना उसी को दोषी ठहराता है।'

'मैं इंद्र हूं। पाठकों की नज़र में मैं ही गुनाहगार हूं। पर मैंने कोई अपराध नहीं किया। कहानीकार शुरू से ही मुझे तिरछी नज़र से देख रहा था और कहानी में मुझे खलनायक बनाने पर तुला हुआ था। पर, मैं भी बे-कसूर हूं। रज़ामंदी से किया गया काम अपराध नहीं कहलाता। अहिल्या की चुप्पी को मैंने उसकी रज़ामंदी समझा। उसने भी कोई विशेष विरोध नहीं किया। आप ही बताइए, ऐसी दशा में मुझ पर आरोप लगाना कहां तक उचित है ?'

उस घटना को बीते बीस साल हो गए हैं। गौतम ने अपना केस समय रूपी न्यायधीश के हाथों में सौंप दिया है। न जाने कितना समय और लगेगा-न्याय मिलने में ? धीरे-धीरे वह यह भी भूलने लगा है कि न्याय मिलने की स्थिति में वह चाहता क्या है ?

इन दिनों गौतम चुप-चुप रहने लगा है। और स्वयं को रामायण की पात्र अहिल्या जैसा महसूस करता है-भाव-रहित, निष्प्राण। रिश्ते-नाते उसे इक ढौंग से ज़्यादा कुछ नहीं दिखते-अपनी हैवानियत को छिपाने के मुखौटे मात्र। वरना, आदमी आज भी जंगली है-जानवर है। रामायण की अहिल्या की तरह किसी राम की प्रतीक्षा में है गौतम, जो आकर उसके मानसिक क्लेश को अपने स्पर्श से घटा सके।

मेरी इस कहानी की अहिल्या को किसी राम की प्रतीक्षा नहीं है। वह गौतम से बहुत खुश भी है और संतुष्ट भी। उसका मानना है कि उसे गौतम अधिक प्रेम और सम्मान दे रहा है। कोई भी पति-यहां तक कि रामायण के राम भी इतने विशाल हृदय नहीं हो सकते कि इतनी अप्रिय घटना को माफ कर सकें।

और इंद्र..............

इंद्र ने तो कभी भी अपने-आपको गुनाहगार माना ही नहीं फिर वह किसी राम की प्रतीक्षा क्यों करें ?

00000000

रुक जाइए ! कहानी के पाठको, कृपया रुक जाइए। मेरा बयान अभी बाकी है।

'आप कौन हैं ? कहानीकार, कहानी को समाप्त कर चुके हैं। अब तुम............. ?'

'जी.......... मैं............मैं..........इंद्र की पत्नी हूं। कहानीकार के साथ-साथ आप भी मुझे भूल जाएंगे-मैं सोच भी नहीं सकती थी। मेरे पास भी कुछ है कहने को। पर, रुकिए, ज़रा आगे-पीछे देख लूं। कहीं वह न सुन लें। कमबख्त मारता है तो चमड़ी उधेड़ देता है। जिस रात यह वारदात हुई थी, उसकी चश्मदीद गवाह मैं और मेरी बेटी हैं। मैं आपको सब कुछ बिस्तार से, साफ-साफ सुनाती हूं। उस रात को मैं और मेरी बेटी सोए कहां थे ? बस, सांसें रोके लेटे रहे थे। जो बाप अपनी बेटी को ....।'

इंद्र की पत्नी का गला रुंध गया है। उसके मुख से शब्द निकल तो रहे हैं, पर अस्पष्ट से।

०००

नाटक

हम ऐसे क्यों है

❐ वरुण सुथरा

एक लड़की मंच पर अजीब हरकतें कर रही है, और पीछे उसी प्रकार का संगीत बज रहा है, संगीत धीमा होने पर रुककर वह कहती है।

हैरत : आप लोगों को मुझे देखकर हैरानी हो रही होगी, होनी भी चाहिए। (हँसकर) क्योंकि मेरा नाम हैरत है। मेरा ज़िंदगी जीने का अंदाज़ आप लोगों से बिल्कुल अलग है। मैं आप लोगों की तरह आम इन्सान नहीं हूँ। जिन कामों को करने से आप डरते, शर्माते और घबराते हैं, उन्हें तो मैं झट से कर लेती हूं। यकीन नहीं आता, मैं इस तरह मुँह ऊपर करके थूकती हूँ, क्या आप कर सकते हैं ऐसा ? मैं भैय्या की किताबें फाड़ देती हूँ, आप कर सकते हैं ऐसा ? मैं तो अपने दांतों से ही नाखून काट लेती हूँ, आप कर सकते हैं ऐसा ? आप कुछ नहीं कर सकते और पता है मुझे तो सबके फोन नः याद रहते है, चाहे किसी का भी पूछ लो। हूँ! देखा मेरा कमाल ! क्या कहा ? विश्वास नहीं हो रहा (तभी एक लड़की हाथ में डायरी लिए आती है, जो हैरत के घर से ही किसी का प्रतिनिधित्व कर रही है।)

निधि : हैरत छोटी चाची का फोन न. क्या है ?

हैरत : 2643260

(निधि न. उतारती जाती है)

निधि : संजू भैय्या का।

हैरत : 9419187070 मोबाइल का,

2456780, घर का, 2472243 दुकान का

निधि : बस-बस, एक ही बहुत है, क्या मैमोरी है। हमसे तो ये ही पगली भली। (वह चली जाती है)

हैरत : अब लग रहा है कि आप मुझे समझने लगे हैं, पर इस प्रकार की मैं अकेली नहीं हूँ, मेरी तरह और भी बहुत से मनुष्य हैं,

हमारी एक अलग दुनिया है, अपना जहाँ है। आज मैं उसी दुनिया के अपने कुछ दोस्तों से आपकी मुलाकात कराऊँगी। पर एक बात का ध्यान रहे आप इन्सान लोग इस दुनिया का हिस्सा नहीं बन सकते। सुना है आप लोगों को जो चीज़ अच्छी लगे, उसी पर कब्ज़ा कर लेते हैं। (तभी एक औरत के चीखने की आवाज़ आती है।)

औरत (दादी) : हाए, बेड़ा गरक हो तेरा, मुआ धरती पे बोझ, हाए मर गई।

हैरत : ये तो अद्भुत की दादी के चीखने की आवाज़ आ रही है। मैं तो चली .... (मुड़कर)

कौन अद्भुत, मेरा दोस्त मेरी ही तरह है। और भी जानना चाहते हैं उसके बारे में। तो खुद ही देख लीजिए न, मैं फिर आती हूं, भैय्या की किताबें फाड़कर, (ही ही .... मज़ा आता है) (एक लड़का दौड़ता हुआ आता है, उसके पीछे एक औरत भी आती है।)

औरत (माँ) : अद्भुत-अद्भुत रुको। (सहलाते हुए) तुमने गंदी बात की। दादी को दाँत से काटा, गंदी बात ऐसा नहीं करते।

अद्भुत : गंदी, मारती हैं मुझे।

माँ : ऐसा नहीं कहते बेटा।

दादी : (आते हुए) कम्बख्त ने अंदर, तक दाँत गड़ा दिए। और इतनी दर्द तो तब भी नहीं हुई भी जब इसका बाप पैदा हुआ था। इस पागल को पालना तो साँप को दूध पिलाने से भी खतरनाक है।

माँ : माँ जी ये क्या कहती जा रही है आप ? आपको तो पता है कि वो कैसा है, फिर भी आप ?

दादी : हाँ-हाँ आज से नहीं दस साल पहले से मालूम है कि ये सरका हुआ है, कितनी बार कहा था कि इसे किसी पागलखाने में भरती कराओ, पर मेरी कौन मानता है।

माँ : ये जान-बूझकर तो ऐसा नहीं करता। आज इसकी जो हालत है उसमें इस बेचारे का क्या कसूर ये बेचारा तो खुद नसीब का मारा हुआ है।

दादी : ये बेचारा है तो मेरी ये हालत करता है अगर ये बेचारा न होता तो न जाने मेरी क्या दुर्दशा करता।

(अद्‌भुत दादी पर झपटता है, प्यार करता है)

दादी : हट मुए, कहाँ चढ़ा आ रहा है।

माँ : अद्‌भुत बेटा आ जाओ, बैठो, चलो स्केच बनाकर दिखाओ। ये लो पेपर, पकड़ो इसे, ये रही पेन्सिल अब हमारा प्यारा बेटा मम्मा का स्केच बनाएगा।

(अद्‌भुत स्केच बनाकर दिखाता है।)

माँ : अरे वाह, देखा माँ जी कितना हुनर है इस लड़के में, हूबहू मेरा चेहरा बनाया है।

दादी : हूँ.......

माँ : चलो अब दादी माँ का स्केच बनाकर दिखाओ।

दादी : मुझे नहीं बनवाना ये सब।

माँ : आप एक बार प्यार से बात करके तो देखिए। हमेशा चिढ़ती रहतीं हैं। एक बार तो प्यार से कहिए।

दादी : अद्‌भुत बेटा (पुचकारते हुए) दादी का स्केच बनाओ।

माँ : देखा आपने प्यार से कहा तो कितनी लगन से स्केच बनाने लगा।

दादी : बना दिया, दिखा तो

(अद्‌भुत दिखाता है) बेड़ा गरक हो इसका, देख बहू तेरे लाड़ले ने क्या बनाया है। मुए ने बंदरिया की शक्ल बनाई है (माँ हँसती है)

तुम भी हँस रही हो, हँसो...हँसो

तुम सब एक जैसे हो

हँसते-हँसते (हँसी की ध्वनि चल रही है, हैरत भी हँसता है और बाकी तीन लोग भी। Out of focus हो जाते हैं)

(हैरत हँसती हुई आती है) वो हँसना बंद कर देती है तो भी हँसी की आवाज़ें चलती रहती हैं और धीरे-धीरे भयानक हास्य की ध्वनि आने लगती है।

हैरत : मैं इसलिए आप लोगों से नफ़रत करती हूँ आप लोग हम लोगों पर हँसते हो (अद्‌भुत आ जाता है)

अद्‌भुत : हैरत सब हम पर हँस रहे है, कोई गाली निकालता है तो कोई धकेल देता है। कुछ बच्चों ने पत्थर फेंके, देखो मेरा खून निकला। (कहता हुआ चला जाता है।)

हैरत : आप लोग हमेशा हमसे घृणा करते हैं। हमारी उपेक्षा करते हैं। हमारा कसूर ये है कि हम ऐसे है कभी आपने सोचा है कि हम ऐसे क्यों है ? हमें आपकी सहानुभूति नहीं चाहिए। (चीखने लगती है) आप हमें कहाँ ले जा रहे हैं, छोड़िये।

(कुछ लोग जबरदस्ती किसी माता के पास ले जाते हुए दिखाए जाते हैं, एक लड़की चौकी ले रही है)

माता : इनके बीच किसी दुष्ट आत्मा ने वास कर लिया है।

दादी : रक्षा करो माता जी, रक्षा करो मेरे बच्चे को बचा लो।

माता : मेरा चाबुक लाओ (मारते हुए) निकल बाहर, निकल, छोड़ उस बच्चे का पीछा कमबख्त छोड़ तू जिद्दी है तो मैं भी तेरी माँ हूँ, मैंने बड़े-बड़े भूत निकाल दिए तेरी क्या औकात है? ऊँ ह्रीं क्लीं चामुण्डाय विचै नम :

(दर्द भरा संगीत बज रहा है, दृश्य भी उसी प्रकार चल रहा है,

कुछ देर बाद, सिर्फ पीड़ित रह जाते है और बाकी सब चले जाते हैं)

हैरत : आप लोग क्या चाहते हैं?

अगर हम जैसा होना गुनाह है तो हमें मार क्यों नहीं दिया जाता? हमें रास्ता भी दिखाते हैं तो ऐसा जहाँ सिर्फ यातना और पीड़ा मिलती है। नहीं चाहिए हमें आपकी दया, आप हमें कहते हैं न कि हम ऐसे क्यों है हम आपसे कहते है कि पूछिए अपने-आप से पूछिए हम ऐसे क्यों हैं ?

ooo

श्रेष्ठ कौन

❐ रजनीश कुमार गुप्ता

पात्र परिचय

1. शुक्ला, 2. रमा, 3. मिस्टर तन्हा, 4.रमन मल्होत्रा, 5. नीता रानी, 6. नारायणी 7. चंद्र कुमार, 8. नवीन ग्रोवर, 9. सुशीला कुमारी, 10. अशोक।

(कवि सम्मेलन की तैयारियाँ हो रही हैं। संस्था में पड़ा कुछ बेकार सामान एक कोने में सरका दिया गया है ताकि बैठने के लिए जगह खुली हो जाए। उसी खुली जगह में एक सफेद चादर बिछा दी गई है जिस पर आठ-दस कवि विराजमान हैं। सभी अपने-अपने साथ लाई कविताएँ मन-ही-मन रट रहे हैं। संस्था का चपड़ासी अशोक कभी दीवार पर लगा बैनर ठीक कर रहा है तो कभी वाटर कूलर में से पानी निकाल कर कविजनों को पिला रहा है। शुक्ला जी कविजनों को देखते हैं और घोषणा के लिए गला साफ़ करते हैं।

शुक्ला : यहाँ पधारे सभी कवियों व कवयित्रियों का मैं इस संस्था का प्रधान होने के नाते हार्दिक स्वागत करता हूँ। जैसा कि सभी जानते हैं हर साल की तरह आज भी हम वार्षिक कवि गोष्ठी के सिलसिले में इकट्ठा हुए हैं। यहाँ सभी बड़े-बड़े फनकार बैठे हैं। आशा है वे अपनी रचनाओं से समाँ बाँध देंगे। याद रहे अव्वल आने वाले कवि को उचित पुरस्कार से भी नवाज़ा जाएगा। (तालियाँ बजती हैं शुक्ला जी मुस्कुराते हैं।) तो सबसे पहले मैं रमा जैन जी को अपनी कविता सुनाने के लिए आमंत्रित करता हूँ। (सभी फिर तालियाँ बजाते हैं। रमा कुछ आगे सरक आती है और साड़ी का पल्लू ठीक करती है।)

रमा : (गला साफ़ करते हुए) Excuse me एक गिलास पानी मिल सकता है ?

शुक्ला : (एक ओर देखकर) अशोक एक गिलास पानी ले आओ रमा जी के लिए। (एक कोने में दुबक कर खड़ा अशोक एकदम से वाटर कूलर में से पानी निकालता है और रमा के आगे गिलास रख देता है।)

---

* 11 - सी, शास्त्री नगर, जम्मू

रमा : (पानी पीकर) Thanks ! Actually क्या हुआ न कि आज सुबह fried खा लिया। इसलिए ज़रा .... anyway यहाँ आए सभी जनों का अभिनंदन करती हूँ। Actually क्या हुआ न कि साल-भर पहले इनकी posting एक बहुत ही पिछड़े हुए पहाड़ी इलाके में हो गई। bye God वहाँ के लोग बहुत ही गरीब थे इतने कि मैं अपने को यह मार्मिक कविता लिखने से रोक ही न पाई। Bye God ! आपके भी आंसू निकल आएँगे।

मि. तन्हा : आपका स्वागत है।

रमा : (अदा से) Thanks (कविता शुरू करती है)

कुछ बुझे हुए से चेहरे
अधमुंदी आँखें लिए
ख़ौफ़नाक से लगने लगते हैं
जब मांगते हैं दया की भीख
सड़क पर अविराम चलने वालों से।

सभी : वाह ! वाह ! वाह !

रमा : (अदा से) Thanks.

एक रोटी का टुकड़ा, पर्याप्त है
उन मिचमिची आँखों की चमक के लिए
खाकर जिसे
वे बुझे हुए चेहरे
कांतिहीन से बन जाएँ कांतिमय
तब शायद चलने लगें उनके हाथ
फौलाद की तरह।
पके गेहूँ की बालियाँ लहलहाने लगें।
रोटी के असंख्य टुकड़े प्राप्य
हो जाएँ असंख्य लोगों को।
आओ रोटी का वो नन्हा-सा टुकड़ा
फेंक दें उन
बुझे चेहरों के आगे।

मि. तन्हा : (ताली बजाकर) वाह ! वाह ! वाह ! क्या करारी चोट है आज

की व्यवस्था पर।

रमन मल्होत्रा : रमा जी आप तो हमारे शहर का हीरा हैं हीरा। चंद शब्दों में कितनी बड़ी बात कह दी। वाह ! मज़ा आ गया।

नीता रानी : रमा जी, आप अपनी रचनाएँ छपवाती क्यों नहीं ? कमाल है, इतने बड़े ऑफ़िसर की पत्नी होकर भी आप इतनी डाऊन टू अर्थ हैं।

शुक्ला : अरे अशोक, रमा जी को पानी पिला ज़रा। कितनी जोश से भरी कविता सुनाई है इन्होंने।

नारायणी : वैसे रमा जी, आजकल आपके husband कहाँ posted हैं।

रमा : (इठलाकर) Executive Engineer बन गये हैं। Posting यहीं इसी शहर में है।

मि. तन्हा : क्या ? वैसे शुक्ला जी, आज के इस सुअवसर पर उन्हें Chief guest बना लेना चाहिए था। प्रतिभागियों का उत्साह बढ़ जाता।

रमा : Oh no ! उनके पास time ही कहाँ है हमारी गोष्ठियों के लिए He is such a busy man.

शुक्ला : ख़ैर, फिर कभी सही। उन्हें हम छोड़ेंगे थोड़ा। (हंसता है) हा....... हा........हा........ तो अब बारी है चंद्र कुमार जी की जो अपनी हास्य कविताओं के लिए ख़ासे चर्चित हैं। (तालियाँ बजती हैं। चंद्र कुमार की आँखों में चमक आ जाती है।) तो आइए चंद्र कुमार जी, आरंभ कीजिए।

चंद्र कुमार : (आगे-पीछे मुस्कुरा कर देखते हुए) आज मैं जो कविता आप लोगों को सुनाने जा रहा हूँ, उसका शीर्षक है 'कपड़े'।

रमन मल्होत्रा : 'कपड़े' वाह ! क्या शीर्षक है। एकदम नया। आशा है इस कपड़े के अंदर कपड़ों के कई थान लिपटे होंगे।

चंद्र कुमार : (हंसकर) हें......... हें.......... हें......... मेरा प्रयास है।

नारायणी : आपके प्रयास बड़े धाकड़ होते हैं।

मि. तन्हा : याद है, पिछली बार इन्होंने 'कुत्ता' नामक कविता से हंसी की कितनी फुलझड़ियाँ छोड़ीं थीं।

रमा जैन : अरे हाँ, मैं तो रात को सोए-सोए भी हंस पड़ती थी।

नवीन ग्रोवर : फ़िक्र मत करें। इस बार तो ये बम ही फोड़ देने के चक्करों में हैं।

सुशीला कुमारी : चंद्र जी, अब शुरू भी कीजिए। हमारी उतावली बढ़ती ही जा रही है।

रमा जैन : (कुछ बुरा-सा मुँह बनाकर) शुक्ला जी, Bye God ! कुछ ठंडे

का इंतज़ाम किया है कि पानी से ही टरका देने का इरादा है ?

शुक्ला : (सकपका कर) अजी क्यों नहीं। (अशोक की ओर देखकर) अशोक, क्या बिटर-बिटर देख रहा है, ठंडा क्यों नहीं रखता मेहमानों के आगे ?

मि. तन्हा : बेचारा कविताओं का सिर-पैर पकड़ने की कोशिश कर रहा होगा। (सभी हंसते हैं)

रमा जैन : (तरस जतलाकर) उस पहाड़ी इलाके के लड़के भी ऐसे ही लग रहे थे। अनपढ़ गंवार से। मुझे तो बड़ी दया आई बेचारों पर। (अशोक झेंप जाता है और प्लास्टिक के गिलासों में Cold drink डालने लगता है।)

नवीन ग्रोवर : ये लोग पढ़ने से खिसकते भी तो फिरते हैं। लट्ठ लेकर पीछे पड़ो तब भी बाज़ नहीं आएँगे।

रमन मल्होत्रा : हमारे घर में भी हैं एक महाशय, फिल्मी गानों का एक-एक शब्द याद है। आढ़े-तिरछे पैर बनाकर डाँस भी ग़ज़ब का करेंगे, पर पढ़ने का नाम लो तो बुरा-सा मुंह बन जाता है। तिस पर काम छोड़ने की धमकी अलग। (सभी हंसते हैं - तब तक अशोक सभी के सामने ठंडा परोसने आ जाता है। सभी गिलास उठाने लगते हैं।)

शुक्ला : तो चंद्र कुमार जी, बोलिए कुछ।

चंद्र कुमार : धन्यवाद। (कविता शुरू करता है)

एक बड़े शहर के
बड़े से शो रूम में
प्लास्टिक के एक बुत को
देखकर सहसा
ठिठक जाते हैं मेरे कदम।

सभी : वाह ! वाह ! वाह !

रमा जैन : क्या बात कही है।

चंद्र कुमार : कितना मंहगा सूट धारण करता है, यह बुत नित रोज़
कभी Wrangler की तो कभी Allen Solly, की शर्ट पहनता है
उस शरीर के ऊपर, जिसमें न चेतना है, न कोई जान
कपड़ों की ही चकाचौंध ने, जबरन फूंके जिसमें प्राण
काश बन जाऊँ मैं भी, वो शो-केस में सजा बुत्त

महंगे कपड़े पहनाकर, कर देती हैं सुंदरियां
जिसे नितांत तृप्त, खींचती हैं अपने मोबाईलों से
फोटुएँ जिसकी अनगिनत।
वरन् इस मांस-पिंड, पर पड़ा काटन का कपड़ा
लुभाता नहीं कोई नार।
जिह्वाओं से नहीं देखीं, कभी टपकती कोई लार।
चेतना मेरी लुप्त कर दो।
बना दो मुझ को भी निष्प्राण।
हे जग के पालनहार, कर दो इतना तनिक कल्याण
महंगे कपड़ों में लिपटा, शो केस में सजा
मुझे वो बुत्त बना दो।
(सभी ज़ोर से तालियाँ पीटते हैं।)

नवीन ग्रोवर : वाह ! वाह ! वाह ! मज़ा आ गया। क्या कविता कही है। Superb.

नारायणी : न जाने कहां-कहां से ideas आते हैं इनके दिमाग़ में। मान गए। वाह !

शुक्ला : सभी बराबर की ही चोट कर रहे हैं। मि. तनहा, आप जज बने हैं। देखना कहीं मुश्किल न खड़ी हो जाए आपके लिए।

मि. तन्हा : मुझे खुशी है हमारे शहर में इतने बुद्धिजीवी लोग उभरकर सामने आ रहे हैं।

रमा जैन : वाकई लाजवाब कविता थी चंद्र जी। आप ख़्वामख़्वाह Audit Deptt. में चले गए। आपको तो हिन्दी का प्रोफैसर होना चाहिए था।

सुशीला कुमार : तब तो आप इनकी student होती।

चंद्र कुमार : काश हमारी ऐसी किस्मत होती जो इतनी हसीन Student के प्रोफैसर बन पाते।

रमा जैन : (शरमाकर) आप भी न चंद्र जी............

नीता रानी : घबराइए नहीं, रमा जी, मैं भी आपके साथ ही होती।
(सभी ज़ोर से हंसते हैं। शुक्ला अशोक को देखता है)

शुक्ला : अशोक तुम चाय का पानी चढ़ा दो।

अशोक : जी, सर। (मंच के एक ओर सरक जाता है)

शुक्ला : अच्छा, अब नारायणी अपनी कविता हमारे समक्ष रखेगी।

नारायणी : बाप रे, एक तो मुझे सबके सामने बोलने से बड़ा डर लगता है।

नवीन ग्रोवर : अरे हम सब अपने ही हैं। डरना कैसा ?

मि. तन्हा : वैसे आपकी कविता डरावनी है तो रहने दिजिए।

(सभी हंसते हैं।)

नारायणी : अरे नहीं-नहीं। मेरी कविता डरावनी हरगिज़ नहीं है। मानवीय मूल्यों की मुंह बोलती तस्वीर है।

श्रमन मल्होत्रा : आपका स्वागत है।

नारायणी : धन्यवाद (कविता शुरू करती है।)

कभी मैंने भी देखे थे
हसीन रंग-बिरंगे सपने
कल्पनाओं को साकार करने की
पाली थी कभी ख़्वाहिश

नवीन ग्रोवर : वाह ! क्या बात कही है।

चंद्र कुमार : ग़ज़ब।

नीता कुमारी : बहुत खूब।

नारायणी : तब नन्हीं थी मैं
नहीं जानती थी सपनों का मतलब
मैं जिन पंखों का सहारा लेकर
उड़ने का यत्न कर रही थी
एक रात सोए-सोए कुतर बैठा
शिकारी वो पंख
सुबह हुई तो मैंने पाया
मैं बड़ी हो गई हूँ।

रमन मल्होत्रा : मान गए। मान गए। वाह ! वाह ! वाह !

शुक्ला : (हैरान होकर) नारायणी, तुम तो वाकई परिपक्व हो गई हो। बहुत बड़ी बात कह दी तुमनें।

नारायणी : (खुश होकर) शुक्रिया।

रमा जैन : (कुछ जलकर) शुक्ला जी, आपकी रचनाओं से प्रेरित लगती है नारायणी की कविता।

चंद्र कुमार : लेकिन मौलिकता साफ़ झलक रही है। वाह नारायणी बहुत बढ़िया।

नारायणी : शुक्रिया।

शुक्ला : नारायणी की दमदार कविता के पश्चात् मैं निमंत्रण देता हूँ रमन मल्होत्रा को।

(सभी तालियाँ बजाते हैं।)

रमन मल्होत्रा : इस बार out of city होने की बजह से कुछ ख़ास नहीं लिख पाया, फिर भी कोशिश की है।

नीता कुमारी : आपका स्वागत है।

रमन मल्होत्रा : धन्यवाद। (कविता शुरू करता है।)

कभी हम भी अमीर बनेंगे

सुशीला कुमारी : अरे वाह ! क्या विचार है।

रमन मल्होत्रा : (ओर जोश में आकर)

कभी हम भी अमीर बनेंगे।
खूबसूरत बंगला होगा
फ्रिज, टी.वी., एयर कंडीशनर।
चलना नहीं पड़ेगा पैदल सड़कों पर
होगा हाथ में गाड़ी क़ा स्टेयरिंग
तब हमें देखकर कोई एक और गरीब
आसमान की ओर रुख करके ज़रूर बोलेगा
कभी हम भी अमीर बनेंगे।

रमा जैन : वाह ! रमन जी क्या बात कही है, एक गरीब के दिल की ! मज़ा आ गया।

नवीन ग्रोवर : रमन जी, आपकी रचनाएँ बहुत फ्रेश होतीं हैं। कितनी खूबसूरती से गरीब का ख़्वाब बिखेरा हमारे सामनें। really great.

शुक्ला : (अशोक की तरफ देखकर जो रमन मल्होत्रा की कविता पर फीकी हँसी हँस रहा है) अशोक चाय तैयार हो गई क्या ?

अशोक : (एकदम घबराकर) बस सर, दूध डालना बाकी है।

नारायणी : इतनी देर से नवीन ग्रोवर और सुशीला की कविताएँ सुन लेते हैं। उन्होंने भी ग़ज़ब ढाया होगा।

शुक्ला : तो ठीक है, अब सुशीला को ही कहते हैं कि वो अपनी रचना हमारे

सम्मुख रखे। (तालियां बजती हैं।)

सुशीला : मैं आप सबका धन्यवाद करती हूँ। (अशोक चाय के चूल्हे की तरफ जाता-जाता रुक जाता है। वो कविता सुनने के मूड में है।)

सुशीला : मेरी कविता का शीर्षक है - प्रियतम।

चंद्र कुमार : बहुत खूब।

सुशीला : धन्यवाद।

बादल उमड़ते हैं।

मन के आवेग घुमड़ते हैं।

पवन कल-कल सी बोले है

मन मयूरी संग डोले है

दामिनी चमकती है

शृंगार करने को उमंग दमकती है

किसलय पर ओस सजती है

हृदय की वीणा बजती है

प्रियतम अब तो आ जाते।

रमन मल्होत्रा : वाह ! वाह ! वाह ! शृंगार रस की कमी पूरी हो गई, इस गोष्ठी में। सुशीला जी, बहुत खूबसूरत कविता गढ़ी है आपने।

रमा जैन : (शरारत से) इनके प्रियतम महाशय बाहर जो posted हैं। ऐसी कविताएँ रचने में तो इन्हें महारत हासिल है।

शुक्ला : अब इस गोष्ठी के अंतिम वक्ता हैं - नवीन ग्रोवर ! (नीता रानी से) नीता जी, आप photos ले रही हैं न। कल के अखबार में अच्छी रिपोर्ट आ जाए इस गोष्ठी की।

नीता रानी : आप घबराइए नहीं शुक्ला जी। मैं पत्रकार होने के नाते अपना काम बखूबी जानती हूँ।

शुक्ला : ठीक है। तो आइए नवीन ग्रोवर जी। (तालियाँ बजती हैं।)

नवीन ग्रोवर : धन्यवाद। मेरी कविता का शीर्षक है 'पचास रुपए का नोट'।

चंद्र कुमार : वाह ! क्या शीर्षक है।

नवीन ग्रोवर : मेरी जेब में पचार रुपए का नोट पड़ा है।

बाज़ार से गुज़रते एक भिखारिन

पर नज़र पड़ती है

सोचता हूँ इसे दे दूँ
पर नहीं।
यह नोट तो उस बच्चे को चाहिए
जो तन से नंगा है
माँ का आँचल खींचकर
मांग रहा है रोटी के चंद ग्रास
पर क्यों
इस नोट पर अधिकार तो
उस बूढ़े का भी है
अशक्त टाँगों के कारण
चलती गाड़ी से जो टकरा गया है
अरे, वो आ रहे हैं
तूफान पीड़ितों के लिए
चंदे का प्रबन्ध करने वाले भी
निकालने लगता हूँ पचास का
वो नोट अपनी जेब से
लेकिन तभी आवाज़ आती है
अंदर के किसी कोने से
अरे बेवकूफ ! क्या कर रहा है यह ?
इस पचास के नोट से तूं
ख़रीदने निकला है
अपनी पत्नी के बालों पर
सजाने के लिए फूलों की माला
हाथ में पकड़ा नोट तब फिर से
चला जाता है मेरी जेब के अंदर।

रमा जैन : वाह ! वाह ! वाह ! कमाल है। खूब। बहुत खूब।

नारायणी : मान गए नवीन साहब। सच में मान गए।

रमन मल्होत्रा : क्या बात कही है। लाजवाब।

नवीन ग्रोवर : धन्यवाद। धन्यवाद।

शुक्ला : तो आज की गोष्ठी संपन्न होती है। (तभी अशोक आता है- वो बड़ी मुश्किल से साहस करके बोलता है।)

अशोक : (शुक्ला से) सर, अगर आप आज्ञा दें तो मैं भी एक कविता सुनाऊँ। बहुत दिनों से लिख रहा था। (सभी हैरान होकर एक-दूसरे की ओर देखते हैं। फिर ज़ोर से हँस पड़ते हैं।)

शुक्ला : अरे अशोक, तुमने कविता लिखी है ? मैं यकीन नहीं कर सकता।

अशोक : मैं सच कह रहा हूँ सर। इधर गोष्ठियां सुनते-सुनते मुझे भी कविता लिखने को शौक चढ़ा था। यह कविता में पिछले पाँच महीनों से पूरी कर रहा था, कल रात को ही इसे ख़त्म किया है।

रमा जैन : (व्यंग्य से) ओह ! तो अब इस संस्था में नए-नएं कवि पधार रहे हैं। चलो भई, नई पीढ़ी का शुक्ला जी की संस्था में हार्दिक स्वागत है।

नवीन ग्रोवर : शुक्ला जी, यह बुद्धिजीवियों और पढ़े-लिखे लोगों की संस्था है। इस लड़के को कहिए हमारा समय बर्बाद मत करे।

नारायणी : ठीक है। आखिर हमारा कोई Standard है। (अशोक का मुंह उतर जाता है। शुक्ला उसे देखता है। फिर अचानक वह मुस्कुराता है।)

शुक्ला : नवीन जी, आपने सही फरमाया यह बुद्धिजीवियों की संस्था है, परन्तु कविता कहना केवल बुद्धिजीवियों का काम तो नहीं। अनपढ़ लोग अपने अनुभवों से पढ़कर भी तो कविता कर सकते हैं। अशोक को पूरा अधिकार है कि वह इस गोष्ठी में अपने विचार हमारे सामने रखें। आओ अशोक आगे आओ (सभी की आँखों में नाराज़गी उतर आती है। अशोक का मुंह खिल उठता है।)

अशोक : (जेब में से मुड़ा-तुड़ा कागज़ का टुकड़ा निकालते हुए)-
सर, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। (कुछ आगे आकर) मेरी कविता का नाम है Allowance Overtime :-

एक ऑफिसर की पत्नी
गालियाँ निकाल रही थी
अपाहिज भिखारी को
अनपढ़, निठल्ला, जाहिल
जैसी उपाधियों से
शोभित कर रही थी उसे।
उसके नन्हें बच्चे ने

थूक भी फेंका
उस अपाहिज के हाथ पर।
माँ ज़ोर से हँसी
नन्हें बच्चे के
इस बड़े काज पर।
रोता-तिलमिलाता वो भिखारी
आखिर बिलख उठा।
उपनामों का बोझ उठाता
सिसक उठा।
शाम हुई, सज गया टेबल
ऑफिसर का।
चाय केतली, काजू नटस,
मखमली घास
टी.वी. पर रेंगता केवल
ऑफिसर न पहुँचा घर
पहुँची एक ख़बर।
रिश्वत लेता रंगे हाथों
पकड़ा गया वो ऑफिसर।
चुटकी ली मीडिया वालों ने
ऊँचा ऑफिसर हो गया नंगा।
रिश्वतखोर बनाम भिखमंगा।
अब ऑफिसर की पत्नी
गालियाँ नहीं निकाल रही थी उसे।
अनपढ़, गंवार, शैतान
जैसी उपाधियों की जगह
मुख से बोल रही थी
मजबूरी, फैशन और trend
रिश्वतखोरी not a crime
late hours में काम करते हैं
पाते हैं allowance over time.

(कहकर अशोक चुप हो जाता है। सभी सकते में आ जाते हैं। शुक्ला जी की आँखें चमक उठती हैं। वह अशोक को प्रशंसा भरी दृष्टि से देखते हैं। तभी रमा जैन कुछ बोलने को होती है।)

रमा जैन : किसी की चुराई हुई कविता तोड़-मोड़ कर पेश करना ठीक नहीं अशोक।

नवीन ग्रोवर : मैं मान ही नहीं सकता एक अनपढ़ लड़का इस तरह शब्दों को रवानगी दे सकता है।

नारायणी : इधर बैठा बस किताबों में से शब्द चुरा-चुरा कर इकट्ठे कर रहा होगा।

रमन मल्होत्रा : अब चाय बनाने वाले चपड़ासियों के साथ हमारी कला का कॉम्पीटीशन होगा how disgusting.

(अशोक का चेहरा पीला पड़ जाता है। शुक्ला बेबस आँखों से उसे देखता है।)

चंद्र कुमार : शुक्ला जी इस लड़के को चाय परोसने के लिए कहिए। मुझे देर हो रही है। मि. तन्हा, आप इस कॉम्पीटीशन के विजेता का नाम बताइए।

(शुक्ला अशोक को इशारा करता है। अशोक धीरे-धीरे कदम बढ़ाता चाय कपों में डालने चला जाता है।)

मि. तन्हा : तो इस कॉम्पीटीशन के विजेता हैं। (रमा जैन की तरफ देखता है। वह मुस्कुराती है।)

नीता कुमारी : अब बताइए न मि. तन्हा।

मि. तन्हा : (ज़ोर से) रमा जैन।

(रमा जैन का चेहरा खिल उठता है। सभी तालियाँ बजाते हैं। शुक्ला जी एक सफेद लिफ़ाफा रमा जैन को पकड़ाते हैं। सभी रमा को बधाइयाँ देते हैं। तब तक अशोक चाय ले आता है। साथ में कुछ खानें को भी है। सभी चाय पीने और बातों में मशगूल हो जाते हैं। रमा जैन सबकी नज़रों से बचती मि. तन्हा के पास आती है और धीरे से उसके काम में फुसफुसाती है) आपके घर में नलका लगाने वाला कल आ रहा है। इन्होंने सुबह ऑफिस जाने से पहले मुझे कहा था।

मि. तन्हा : (खुश होकर) thank you very much रमा जी (रमा इठलाती हुई नारायणी के पास चली जाती है। अशोक एक कोने में खड़ा अपनी कविता फाड़ता है।)

०००

इक कली.....॥

❑ डॉ० गुरु प्रसाद शर्मा

खिलने को बेताब थी इक कली
ढेरों सपने संजोए जिन्दगी में चली
अ़ब तक दुनिया में थी न आयी वो
माँ के दिल को ही न भायी वो
अश्रुधारा से पूर्ण पूछ बैठी कली
माँ तू भी तो किसी की बेटी के रूप में
थी पली
तेरी माँ ने भी तुझे जन्म न दिया होता
क्या आज तूने माँ का रूप लिया होता ?
जानती हूँ माँ, बेटी पर ही जुल्म ढाती है दुनिया
लड़की के लिए ही सीमाएँ, बंदिशें बनाती है दुनिया
पर माँ, इस डर से अगर हर कली
काटते जाएंगे
तो रानी लक्ष्मी, इन्दिरा, कल्पना
कहाँ से लाएंगे?
लड़का विवाह किससे रचाएगा ?
भाई राखी किससे बंधवाएगा?
माँ कहते हैं
लड़की का सम्मान होता है जहाँ,
भगवान वास करते हैं वहां
तो फिर नन्हीं कली को जन्म देने से क्यूं डरता है जहाँ.....?

०००

---

* पटेल नगर, कठुआ। मोबाईल : 9419150711

उसका अंत

❒ सुभाष गुप्ता

वह कुर्सी पर पसर गया। उसे पता है इससे कुछ नहीं होगा। इससे इतना और हुआ है कि एक त्रासदी स्पष्ट होकर उभरी है।

उन सवालों के उत्तर उसे पता है वह जानता था। हो सकता है उस क्षण दिमाग में वे न आ पाए हों क्योंकि मौके पर जो कहना चाहिए वह कह नहीं पाता हो और यह उसकी दिमागी कमज़ोरी हो, लेकिन आज वह इस कमज़ोरी से ग्रसित नहीं रहा। एक पर एक सवाल, जवाब की जगह एक ठंडा लहज़ा और अंत में आज तक पूछे गए कुल सवालों से अलग, अंदर के आक्रोश एवं कुढ़न को झाग-झाग करने वाला एक सवाल- मि. सेन देन ह्वाट डू यू नो ?

इसका जवाब सिर्फ एक गुस्सा है। उन सवालों का जवाब उसके...किसी के भी पास क्या हो सकता जो व्यक्तित्व परखने से अधिक फेल करने के इरादे से किए जाते हैं। सवाल करना अथवा फेल करना बहुत आसान है। फिर यह सब महज़ एक औपचारिकता ही तो होता है। कहते हैं कि बाप की गोद पाने के लिए ध्रुव ने बारह साल तप किया और उसने जो मांगा वही मिला। उसने सोलह बरस तप किया है इंजीनियरिंग की डिग्री पाने के लिए। तप के साथ भय-त्रास, रोग-सोक, तंगी-मंदी आदि अलग उसे सोखते रहे। फिर भी उसे क्या मिला ? उसकी इच्छा का तो दूर, उसे जो मिलना चाहिए था, वह भी ? सिर्फ यही न देन ह्वाट डू यू नो ? ... आप जानते क्या हो ? बार-बार उससे सवाल पूछे गए, उनके उत्तर जाने-लिखवाए गए। एकबार उसके जानने को, जानने के एक सीमित चौखटे पर कस कर परखा गया, उस पर 'पास' का लेवल लगता रहा। इस सब के बावजूद उससे कहा गया- मि. सेन! देन....... ? इस सबका मकसद यही नहीं कि किसी ध्रुव से उसकी बरसों की तपस्या का फल छीना जा सके ? जिस ज़िन्दगी के जीने का हकदार वह है, उस जिन्दगी को उससे छीना जा रहा है एक साज़िश के तहत ? उन लोगों द्वारा जो उस साज़िश में शरीक हैं, जो उस जैसे आम आदमी की ज़िन्दगी के निर्णायक हैं, जो ... वह चारपाई से उठ कर टहलने लगा और अंत में आकर फिर कुर्सी पर बैठ गया।

नौकरी के लिए आवेदन पत्रों का सिलसिला इंजीनियरिंग कालेज से निकलते ही शुरू हो गया था, और कुछ देर बाद इंटरव्यूज़ का भी। हर इंटरव्यू के बाद लगता कि बस कुछ

महीने और, फिर अच्छी-खासी पगार, रहने को फ्लैट, दफ्तर, मातहत और सबसे ऊपर चपरासी, बेल ... 'साहब !'

लेकिन साहब नहीं बन सका वह। साहब तो दूर, वह क्लर्क के स्थान के लिए भी अयोग्य करार दिया गया। यह सच भी था-क्लर्क लगने के योग्य वह कहां था। लेकिन फिर भी अंदर कुछ खौल गया था। वह चाहता था टुकड़े-टुकड़े कर दे, गोली से ठंडा कर दे। लेकिन किसे ?

साहब या क्लर्क बन पाने तक ही खत्म हो जाता कोई सिलसिला तो...। बाप क्लर्क था। हर इंटरव्यू में वही उत्तीर्ण होता, जिसका बाप कोई सेक्रेटरी या एम. पी. था। कुछ इंटरव्यूज के बाद ही वह समझ गया था कि वह साहब नहीं बन सकता था। और यह भी कि अब जैसे-तैसे गुज़ारा होता रहा है और अब ट्यूशन करने को और टाला नहीं जा सकता था। चाहे उसके भीतर एक ऐंठन थी पर इस ऐंठन को पाल कर क्या करता वह? क्लर्क बाप के अधपके खिचड़ी बालों में इतनी उम्र नहीं झांकती थी जितनी उसके चेहरे से। एक मुकाम तक उन्होंने घर के प्राणियों की ज़िंदगी की गाड़ी को किसी भांति खींचा था। अब उनका दम माथे के आसपास, नसों में फूला हुआ लगता था। गहरे खड्डों में धंसी उनकी आंखें शायद दर्द से बोझिल रहती थी और उन नज़रों का सामना बचते-बचाते यदाकदा होते ही ऐसा होता था कि ... दोनों में से कोई भी खुद को इस स्थिति के लिए तैयार नहीं पाता था और पता ही नहीं लगता था कि कौन पहले नज़रें बचा गया है। उनके अंदर एक बेबसी-सी हौल भरती थी। अपनी इस कमज़ोरी को छुपाने के लिए बातों का उपक्रम करना पड़ता था। उन बातों का प्रायः सार यह होता था कि उसके पिछले इंटरव्यू का क्या बना, कि कहीं और दिया है, कि वह पार्ट टाइम जॉब क्यों नहीं कर लेता, कि फलां आदमी ट्यूशन के लिए पूछ रहा था ...। और कब तक वह यूं ही निठल्ला बैठा रहेगा। उन सवालों का जवाब देने से बचने के लिए हमेशा मुन्नी को आवाज़ देनी पड़ती थी... और मुन्नी बाप बेटे के बीच आ गई अस्वभाविकता को ठीक से जान गई थी... पापा, आप हर वक्त... ! वह कंधों से खिसक आई चादर को उचका कर ऊपर ओढ़ते, कहते कुछ नहीं। उखड़ी बल खाई उनकी नज़र का पीछा करती मुन्नी कहती है- भैया खुद तो नहीं न चाहते ऐसा ?

- मैंने कहा है वह चाहता है ?

- बार-बार यही बात कहने का कुछ भी फायदा ? कहीं कुछ कर ... ! आगे की बात मुन्नी की नज़र से पुख्ता हो उठती है। अगर सचमुच वैसा कुछ कर लिया तो उस सब के कसूरवार वहीं होंगे।

मुन्नी उससे दो बरस बड़ी है। किन्नी दो बरस छोटी। किन्नी की शादी अब तक होनी चाहिए थी। लेकिन मुन्नी ही अभी तक नहीं हिली। बुरी कोई नहीं निकली, नहीं तो इस उम्र तक खुद को बस में रखना कठिन है। किन्नी की खामोशी उसे भी दुःखाती है। लगता है इस माहौल में किन्नी भी सहज नहीं हो पाई। गहरे में ताकती रहती नज़रें, अलग-अलग बैठे

रहने का स्वभाव, हंसी-मज़ाक से इस उम्र में भी खीझ तो नहीं पर खुद को सिकोड़ना, कैसी भी परिस्थिति में अपने अंदर के भावों को काट कर रखना और बात करते समय थोड़ा आक्रोश और झिझक। इन सब से लगता है उसके अंदर कहीं कुछ रुका हुआ है, कहीं कोई पानी ठहरा है।

मां का होना-न-होना एक बराबर है। सुबह उठने से रात सोने तक घर के कामकाज से अधिक अपने से व्यस्तता, कोई सामने पड़ जाए तो टुकड़-टुकड़ देखते रहना, दिन-भर बात तो दूर शब्द तक मुंह से न निकालना, गमी-खुशी किसी का भी पता न चलना। लगता है उसे मानसिक तौर पर लकवा मार गया है। और शायद घर के माहौल को भी। किन्नी के अंदर का ठहरा हुआ कुछ पानी-सा, पापा और उसके बीच आ जाती असहजता-सी और मुन्नी या किन्नी, पापा और उसके दायित्वों का बोझ एकसाथ उठा लेना... घर के कोने-कोने में दुबका पड़ा खालीपन, बेजारपन और लकवा मारे माहौल का घुटन भरा अहसास-सभी की, मां कहीं-न-कहीं ज़िम्मेदार ज़रूर है।

किसी का भी अस्तित्व नहीं लगता घर में-न किसी इन्सान का, न कुछ होने का। सिवाय मुन्नी के। लगता है मुन्नी ने सभी का अस्तित्व ओढ़ लिया है-प्रत्येक के दायित्वों और ज़िम्मेदारियों के साथ। घर के खर्चे का खाता, किन्नी की ज़रूरतों का ध्यान, मां को सोचों बेकारी से तंग आकर उसके कहीं कुछ कर न बैठने का फिक्र ... दूसरे लोगों को रख-रखाव तक। मां सिर्फ मुन्नी को समझती है, उससे बात भी करती कैसा भी सलाह-मशवरा, पापा भी मुन्नी से करते हैं। किन्नी, मुन्नी के साथ चिपक कर सोती है। मुन्नी, किन्नी के बालों को सहलाती रहती है तो किन्नी को लगता है कि उसके अंदर के ठहरेपन में कहीं हलचल हो आई है। उसकी छातियों में और मुंह सटाती किन्नी के मुंह से सिर्फ निकलता है - दीदी ! मुन्नी का मां का अस्तित्व कमज़ोर हो उठता है-किन्ने ! इसके बाद मुन्नी उसे देर तक समझाती रहती है कि यूं चुप-चुप नहीं रहते क्योंकि यह उसके बोलने-चालने के दिन हैं, कि उसे पापा से इस लहजे और बेरुखी से पेश नहीं आना चाहिए, कि मां का उसे ध्यान रखना चाहिए, भैया की बातों का गुस्सा नहीं करना चाहिए बल्कि उसकी हर सहूलत का ख्याल रखना चाहिए।

वह घर छोड़ कर कहीं नहीं चला गया, अभी भी.............लाईन साफ नहीं है।

पापा भी यही चाहते थे। उनका चाहना उचित भी था। उनकी अब तक की ... बीस साला नौकरी की बचत बेटे की इंजीनियरिंग की डिग्री ही थी जो फिज़ूल ही खर्च हो गई लगती थी। और इसी की कुढ़न थी जो बाप-बेटे में एक असहजता सी बन गई थी। इंजिनियर बेटे को डांटने की क्लर्क बाप में हिम्मत नहीं थी शायद। बहरहाल उनका मतलब साफ था कि नौकरी न मिलने तक ट्यूशन करने से कम-से-कम वह अपना खर्चा तो निकाल ही सकता है। लेकिन ट्यूशन... यह बात नहीं कि ट्यूशन करने में उसे कोई दिक्कत थी या ट्यूशन कोई नीचा काम था। असल में इसके लिए वह मानसिक तौर पर तैयार नहीं था। टर्बाइनज, आलटर-

नेटर्ज़, ट्रांसफार्मर, सर्किट ब्रेकर... कालेज से निकल कर उसे लगा था कि वह कुछ कर सकता है, लेकिन ट्यूशन करने से नहीं। नौकरी या साहब होने से ज़्यादा वह एक इंजीनियर बना रहना चाहता था जिसके लिए उसने बरसों पहले तय किया था अथवा जिसके योग्य होने का कम से कम उस पर लेबल तो लगा ही था। उसे नकार दी जाती ज़िंदगी जिसके वह योग्य था, इंटरव्यू में पूछे जाते सवाल, इंजीनियरिंग की डिग्री... पापा और उसके बीच की असहजता, कालेज से आ जाने के बाद उत्तरोतर लकवे से पीड़ित होता माहौल और चाहते हुए भी कुछ न कर पा सकने की स्थिति-न चाहते हुए भी उसे इंजीनियर से ट्यूटर बनना पड़ा। उसे एक झटका-सा ज़रूर लगा था।

लेकिन उस झटके को झेल जाने के सिवा चारा क्या था ?

गला घुटा-घुटा सा लगा। टाई की नॉट ढीली की, फिर भी गला रुका-रुका सा लगा। जूतों के फीते ढीले किए, एक पांव जूते के बाहर निकाला फिर अंदर कर लिया। कोफ्त सी हुई।

कुर्सी से उठ खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया। नया कुछ नहीं था। तार पर हमेशा की भांति दो-तीन कपड़े पड़े सूख रहे थे- दो-एक कमीजें, एकाध अंडरबियर... एक ब्रा। चारदीवारी के साथ-साथ बनी नाली का पानी दो-एक जगह से नाली से कच्चे दालान में वह आया था और वहां पर कीचड़ की पपड़ियां जम गई थीं। नाली के साथ-साथ ही गेंदा उग आया था जिसके झाड़ों को दो-तीन बार आगे भी उखाड़ा जा चुका था। दूसरे कोने में टीन की ज़ंग लगी चादरों और खपरैल की कोठरीनुमा जगह में जलाने की लकड़ी और बूरा था।

दालान के बीच टूटी हुई चारपाई पड़ी थी। जिस दिन वह घर पर नहीं होता, जो कि पिछले कुछ महीनों में मुश्किल ही हुआ है, दालान की सजावट में चारपाई की बढ़ोतरी हो जाती है, जिस पर मां बैठ कर घर का ही कोई छोटा-मोटा धंधा करती रहती है। ... पढ़ाते वक्त भी वह जब ऊब जाता है या कुछ समझाते-समझाते दिमाग को थका महसूस करता है तो भी खिड़की के पास खड़ा हो जाता है। दो-तीन मिनट में ही उसे दालान... इसी कुछ को देख कर ही राहत-सी महसूस होती है। लेकिन अब... दिमाग में फिर कुछ तनने लगा। खिड़की से हट आया। चहलकदमी से भी ऊब गया तो फिर कुर्सी पर बैठ गया।

सामने, मेज़ पर से एक किताब उठाई-दसवीं का गणित। एक पन्ना दोहरा था, किताब खुली-प्रश्नावली तीन लाभ-हानि ... बिना हल किए प्रश्न-एक आदमी ने दो घोड़े दो हज़ार और तीन सौ अस्सी के लिए। दोनों को उसने दस प्रतिशत लाभ पर बेच डाला। एक को तेरह सौ में बेचा हो तो दूसरे का विक्रय मोल बताओ ... तेरह सौ अठारह ... एक दुकानदार प्रति किलो सौ ग्राम कम तोलता है। यदि वह पांच रुपए प्रति किलो चीनी लेकर पांच रुपए किलो ही बेचे तो प्रतिशत लाभ बताओ ? ... दस प्रतिशत। ... एक अंडे बेचने ... ठक् से किताब बंद की, दूसरी उठा ली। ... अकबर की राजपूतनीति ... अकबर जानता था कि राजपूतों

के दिलों को जीते बगैर वह एक सुदृढ़ मुगल साम्राज्य की नींव नहीं डाल सकता। ... उसने राजपूत घरानों से वैवाहिक संबंध भी कायम किए। मानसिंह से जोधाबाई ... ! तीसरी इक्नॉमिक्स थी ... माल्थस के सिद्धांत के अनुसार जन ... धप् से किताब फेंकी, उठ खड़ा हुआ। सभी कुछ बेमाने है, बेकार। दिमाग में गर्मी-सी बढ़ने लगी। फिर खिड़की के पास आकर, बाहर बिना देखे ही मुड़ गया। टाई निकाल कर फेंक दी, जूते उतार दिए। पेंट से कमीज़ बाहर निकाल ली। कुछ हल्का-सा महसूस हुआ।

... रोज़ का सिलसिला है। दिन में इसी कुर्सी पर चार-पांच घंटे बैठना। वही लाभ-हानि के प्रश्न, अकबर की राजपूतनीति ... जैसा ही कुछ दिन-भर दुहराना। और बीच-बीच में एक फार्मेलिटी का पूरा करते रहना- 'अंडरस्टेंड ?' ... जबाब में किसी एकाध का हूं ... देना। उन चार-पांच में से एक का कभी-कभी कैसी नज़र से देख लेना और उस जैसी ... को नज़रअंदाज़ करते हुई, उसकी झेंप से, देखने वाले का दबी-सी मुस्कान होठों पर बिछा देना। एक ग्रुप का जाना दूसरे का आना। इस आने-जाने के बक्फे में दुहराए जाने वाले प्रश्नों पर किताब से नज़र मार लेना ... और इस सब सिलसिले में बाहर की दुनिया से उसका बिल्कुल कट जाना। इस बीच बाहर घर में अपने ढंग से सब कुछ होता रहता है जिससे इसका वास्ता इतना-भर होता है कि वह इस सब होने के बीच ही कहीं पड़ा रहता है। एक चक्कर-भर उसका व्यक्तिगत समय होता है जो कमरे के बाहर बीतता है, वह भी दिनभर की दिमागी थकान को महसूसने और कुछ अगले रोज़ की फिक्र में। इस व्यस्तता में आदमी ऊब भी सकता है, यह महसूस करने की नहीं सोचने-भर की बात रह गई है और... नीचे बिछी दरी पर अभी भी तीनों किताबें खुली पड़ी थीं। कुछ देर उनका नज़र में आने का मकसद समझ नहीं आया। हाइड्रॉलिक्स...यूं-ही-पेज़ खोला...वाटर टरबाइन-देयर आर टू टाइप्स ऑफ वाटर टरबाइनज़...रिएक्शन एंड इंपल्ज़। इन रिएक्शन टरबाइन द एनर्जी इज़ कनवर्टिड इनटु विलासिटी बिफोर...धप्-धप्...बरनॉलिज़ इक्वेशन-द सम टोटल ऑफ...फ्लो इन ओपन चैनल...। इलेक्ट्रिकल मशीन्ज़...उससे भी मोटी किताब...ट्रांसफॉर्मर-इज़ ए डिवाइस दैट ट्रांसफार्मज़ एनर्ज़ी फ्रॉम वन सर्किट टू एनादर... इंडक्शन मोटर-रिलेटिव मोशन, बिटबीन फील्ड...। थर्मो-डाइनामिक्स-हीट इंजन इज़ ए डिवाइस... धप् से तीसरी किताब बंद की। कहीं फिर उसी कुछ के होनें का बड़ा तलख अहसास हुआ, कुछ वैसा ही जो इंटरव्यू में अंदर का गुस्सा झाग-झाग हो आने पर हुआ था। अंदर...प्यास सी महसूस हुई। उसने मुन्नी को आवाज़ दी, कोई जवाब नहीं। मुन्नी खाली वक्त में पास वाले घर में होती हैं। किन्नी इस वक्त स्कूल होगी। झाड़ू दलान में ही पड़ा था। मां बुहारना बीच में छोड़ अपने एक ही टिकाने 'बहिन' के पास बैठी दुःख-सुख टटोल रही होगी।...

घड़े के ठंडे पानी से दिमाग को एक ठंडक-सी महसूस हुई। वह उसी टूटी चारपाई पर बिछ गया। आंखें मूंद ली। आंखों की थकान को अंगूठे और उंगली के दबाब से सहलाया। फिर भी चैन न पड़ा तो उठ खड़ा हुआ।

ट्यूशनों का सिलसिला सिर्फ एक बरस चला है जबकि कालेज से निकले एकाध बरस ज़्यादा ही हो गया है। इस अवधि में ही उसमें एक तब्दीली-सी आ गई है। हालांकि इस तब्दीली के बाद जो कुछ वह है, वह अपने में कुछ बुरा नहीं है बल्कि जिस एक स्थिति से निकल कर जिस स्थिति में उसने सहज़ ही खुद को पाया हैं वह भयावह ज़रूर है। वह घातक न होते हुए भी, ऐसी ही कुछ अवश्य है। चकाचौंध से अंधेरे में ला पटकने जैसी स्थिति-आंखें फाड़े रखने पर भी न अंधेरे की पहचान हो पाती है न उजाले की ही। और इस स्थिति से, जिस में यह अब है, उससे उभरना ... यह एक प्रश्न ही नहीं, एक यथार्थ है जिससे बहुत कुछ जुड़ा हुआ है। वही कुछ, कमोबेश जो उसके ट्यूशनें करने का कारण रहा है। या फिर नौकरी... नौकरी लगनी होती तो लग चुकी होती। तब यह स्थिति आई ही न होती। इस स्थिति का जिम्मेदार कौन है ? वह खुद या पापा ? ट्यूशनें या घर का माहौल ? या... उसने घड़ी देखी चार बजने को हो आए थे। जो आज पढ़ाना था, उस पर अभी नज़र भी नहीं दौड़ाई थी। ट्यूशन का चौथा ग्रुप लेना था। उसने उठ कर किताबें लेनी चाही, उठने को दिल नहीं हुआ। एक दिन घंटा-भर वह उन्हें इधर-उधर की में भी उलझाए रख सकता था। लेकिन यह बात उस न उठने के पीछे नहीं थी। बात सुबह का हादसा थी।

सुबह का इंटरव्यू एक हादसा ही था। देर बाद यह इंटरव्यू आया था। सप्ताह हो चुका था इसकी सूचना मिले। काफी वक्त था। चाहता तो अच्छी तरह तैयारी हो सकती थी। लेकिन एक तो उसे नौकरी मिलने का चांस नहीं लगता था। दूसरा, ट्यूशनों से फुर्सत कहां ? लेकिन कुछ तसल्ली भी थी कि किताबों पर, तैयारी के लिए, नज़र ही दौड़ानी काफ़ी होगी जिसके लिए कुछ ही घंटे का वक्त काफी था। और सुबह जब उसने, धूल की मोटी परत झाड़, किताबें खोली तो लगा कि इंजीनियरिंग का अब दिमाग में बाकी कुछ भी नहीं रह गया है। दरअसल बहक वह यहीं गया था। बस किताबें बंद की थीं और चल पड़ा था। उसे पता ही नहीं चल रहा था कि दिमाग में क्या फितूर सुलग आया था। हालांकि साधारण से प्रश्न ही पूछे गए थे जिनके उत्तर वह उसी तैयारी से किसी हद तक सही-सही दे सकता था परन्तु वह हद...

- ट्रासफॉर्मर क्या है ?
- जो एक सर्किट से दूसरे में एनर्जी ट्रांसफर करता है।
- एनर्जी ट्रांसफॉर्मेशन कैसे होती है ?
- खेद है, मालूम नहीं।
- सिंक्रोनस कंडेंसर... ?

- कंडेंसर मेंट फार पावर-फेक्टर इंप्रूवमेंट।

- वेक्टर डाइग्राम से बता सकते हो ?

- नो सर।

.... - ह्वाट इज़ डिसटेंस प्रोटेक्शन ?

ऐसा लगा कि दिमाग में कही कुछ है, शायद वह बता सके। लेकिन ...

- सॉरी सर, डोंट नो।

- ह्वाट आर द कंडीशंज फार सिंक्रोनाइज़ेशन ऑफ द आलटरनेटज़री

- डोंट नो।

दिमाग में गर्मी-सी घुस आई।

- लाइटनिंग अरेस्टर ?

- डोंट नो।

- ह्वाट इज़ रिएक्टिव पावर ?

- सारी सर, डोंट नो।

- मि. ध्रुव देन ह्वाट डू यू नो ? ... तुम जानते क्या हो ?

- अकबर की राजपूतनीति, लाभ-हानि के प्रश्न, माल्यस का सिद्धांत ...।

एक विस्फोट-सा हुआ, दरवाज़ा ज़ोर से पटक कर वह बाहर आ गया। पीछे क्या हुआ वह नहीं जानता। जैसे-तैसे वह घर पहुंचा और कुर्सी पर पसर गया।

उसी पल ट्यूशन ग्रुप दो के विद्यार्थी द्वार पर प्रकट हुए। वह सीधा होकर बैठ गया।

०००

पूर्णाहुति

❑ प्रवीण शर्मा

आज मेरा सारा परिवार नए उत्साह और नवीनता के भाव से भरा हुआ है। शुभ मुहूर्त देख कर आज ही का दिन नए मकान में प्रवेश हेतु चुना गया है। गृह प्रवेश हेतु। इस उपलक्ष्य में एक समारोह-सा आयोजित किया जा रहा है। सारा सामान तो पहले से ही योजना बद्ध तरीके से नए मकान में पहुँचा दिया गया है। परन्तु हमारा प्रवेश अभी शेष है। सच तो यह है कि मकान को परिवार की इच्छाओं के अनुरूप ढालने के लिए मेरी सारी जमा पूंजी समाप्त हो चुकी है परन्तु परिवार की इच्छायें एवं आकांक्षायें समाप्त नहीं हुईं। और आज लोगों को आमंत्रित कर मकान दिखाने की रस्म भी मुझे ही निभानी पड़ रही है। मकान में सादगी से प्रवेश का मेरा सुझाव किसी को भी मान्य न था। भला होता भी कैसे। उन के चहेते मकान को सम्बन्धी न देखें, न सराहें यह उन्हें मंजूर न था और फिर नए मकान में नया सामान और नए वस्त्रों की उन की मांग बिना गृहप्रवेश समारोह के भला कैसे पूरी होती। और आज सब को नया सामान एवं नए वस्त्र प्रदान करने के कर्म में मैं मकान मालिक के साथ-साथ कर्ज़दार भी हो गया हूँ।

विचारों की इस उघेड़-बुन में हम कब नए मकान के मुख्यद्वार की दहलीज पर पहुँच गये, पता ही न चला। मुख्यद्वार को रंग-बिरंगी चुनरियों तथा प्लास्टिक के पुष्पगुच्छों द्वारा सजाया गया है। मैं सोचता हूँ यह कलात्मक कार्य मेरे बच्चे तो कर नहीं सकते, इसे अवश्य ही किसी व्यवसायिक कलाकार द्वारा बनवाया गया होगा। मैं मां, पत्नी और बच्चों सहित भीतर प्रवेश करता हूँ। पंडित जी पहले ही पधार चुके हैं तथा उन्होंने हवन की तैयारियां भी आरम्भ कर दी हैं। मेरे कुछ करीबी रिश्तेदार भी समारोह को साकार रूप प्रदान करने हेतु पहले से ही पहुँच चुके हैं। मैं पंडित जी की सहायता में जुट जाता हूँ और एक स्थान पर केन्द्रित हो तैयारियों का जायज़ा लेने लगता हूँ।

मकान की रिक्तता को भरने के लिए सामान को व्यवस्थित किया जा रहा है। फर्श पर पड़े सफेदी के जिद्दी धब्बों को मिटाने का प्रयत्न किया जा रहा है। सभी चिल्ला-चिल्ला कर अपनी बातों को मनवाने का प्रयत्न कर रहे हैं। बड़े बेटे को घर की बहुत-सी पुरानी चीज़ें पसन्द नहीं है जिन्हें वह फेंकना चाहता है। मेरी मां उसे बार-बार मना कर रही है। कहीं कालीन और सोफे के स्थान को लेकर खींच-तान चल रही है और कहीं पुराने ट्रंक और अलमारी को व्यर्थ जान कर बाहर निकालने की विधियां खोजी जा रही हैं। इस खींचतान में बहुत समय बीत चुका है परन्तु बच्चों को अभी भी बहुत-सी कमियां अखर रही हैं।

अब नये मकान को सजाने का उत्साह चिड़ और थकान में परिवर्तित होता दिखाई दे रहा है। उधर बड़ा बेटा दांत पीस रहा है उसे नए मकान के सामने अमरूद और आम के पेड़ बड़े दिनों से अखर रहे हैं। आज वह उन्हें कटवाने के लिए जिद्द पर उतर आया है। मेरी मां उसे समझाते हुए कह रही है - ''अरे इतनी तेज गर्मी से यही पेड़ इस नए मकान में राहत देंगे।

- आप देख नहीं रही कैसे इस पर बैठने वाले पक्षियों ने ड्राइंगरूम का सामने वाला हिस्सा अपनी बिष्ठा से गन्दा कर दिया है। और फिर गर्मी का ईलाज तो AC है। वह तर्क देता है।

- तुम स्वयं कमाओगे तो पता चलेगा सामान कैसे खरीदा जाता है। मां ने उलाहना दिया।

मैं बीच बचाव कर स्थिति को संभालता हूँ। सोच रहा हूँ आज का मानव सचमुच ही स्वार्थी हो चुका है। शरीर में प्राणों का संचार करने वाले पेड़ों को वह अंधाधुंध काटता चला जा रहा है। वह इसका परिणाम भी भुगत रहा है। ज़िन्दा रहने के लिए 35% वांछित जंगल अब घट कर मात्र 22% रह गए है। परन्तु मानव सोया पड़ा है। पंडित जी के मन्त्रोच्चारण से मैं चौंक उठता हूँ। पवित्र अग्नि में हवन सामग्री की आहुतियों के फलस्वरूप उठने वाली सुगन्ध मेरे तन-मन को तरंगित कर रही है। परिवार के सदस्य भी कुछ सामान्य हो चले हैं। अब तक उन की आवाज़ की कर्कशता कुछ मन्द पड़ चुकी है। शायद वे मेहमानों के समक्ष अपनी खीझ और कटुता को प्रकट नहीं होने देना चाहते। सभी सज-धज कर तैयार हो रहे है। नकली मुस्कुराहट के आवरण ओढ़े जा रहे हैं। भारी-भरकम साड़ी और गहनों के भार तले दबी मेरी पत्नी हवण कुंड के समीप आ बैठ गई है। परन्तु उस के माथे की सिलबटें अभी मिटी नहीं हैं। यह सिलबटें मुझे बोलती प्रतीत हो रहीं हैं। आभास हो रहा है मुझे उन वस्तुओं के लिए प्रताड़ित कर रहीं हैं जिन्हें मैं धनोभाव के कारण ला न सका। आज मुझे आभास हो रहा है एक मकान तैयार करना कितना जोखिम भरा काम है।

फौज की नौकरी ने मुझे बहुत सख्त बना दिया है परन्तु फिर भी परिवार वालों के व्यवहार से मैं आहत हुए बिना नहीं रहा हूँ। मुझे अपना सहकर्मी सुखचैन सिंह स्मरण हो आया है। बहुत बार हम साथ-साथ रहे है। साथ रह कर दुश्मनों का सामना किया है। परन्तु फिर भी वह मेरे लिए जिज्ञासा और कौतूहल का कारण रहा है। मौत के मुंह में भी उस की उन्मुक्त हँसी के ठहाके मुझे चकित कर दिया करते। सेवानिवृति के बाद गांव में स्थाई रूप से निवास करने की मेरी तीव्र उत्कण्ठा से वह भली-भान्ति परिचित था। वह यह भी जानता था मेरा परिवार गांव की छाया से भी बच कर रहना चाहता है। वह सदैव कहा करता - व्यर्थ में मत उलझा करो। व्यर्थ की परेशानी मोल लेना बन्द करो। मैं तुम्हारे साथ हूँ। सेवानिवृत्ति के बाद हम दोनों गांव में रहेंगे। गाँव के पेड़, पौधों और खेतों की सेवा करेंगे। हवन की अग्नि का असहनीय ताप अतीत की यादों का तांता तोड़ता है और मुझे वर्तमान के धरातल पर खींच लाता है। मैं यन्त्रवत् नवग्रह पूजा हेतु धूप, दीप, पुष्प इत्यादि अर्पित कर रहा हूँ।

और मन पुनः गाँव की पगडंडियों में घूमने लगता है। मुझे गाँव के उस गृहप्रवेश की याद आती है जिस में सारा गाँव एक बड़े परिवार की भांति गोबर लिये आंगन में एकत्रित हो प्रीतिभोज किया करता। सभी लोग एक-दूसरे के सुख-दुख में बिन बुलाये ही सम्मिलित हो जाया करते।

बढ़ता शोर पुनः विचारों के क्रम को तोड़ता है। मेहमानों का तांता लगना प्रारम्भ हो गया है। परिवार के सदस्य 'अतिथि देवो भव' को चरितार्थ करते नज़र आ रहे हैं परन्तु सब की नज़रें हर आगन्तुक के हाथ में पकड़े उपहार पर टिकी हैं। कृत्रिम मुस्कुराहटों का आदान-प्रदान हो रहा है। सभी सगे-सम्बन्धी भी अपनापन जतलाने के लिए बड़े-बड़े डिब्बों में बन्द उपहार उठाये चले आ रहे हैं लेकिन किसी की भी आँखों में अपनेपन की कोई झलक नहीं। सभी यंत्रवत् मुबारक देते हुए उपहार थमा रहे हैं और उपहार प्राप्त करने वाले भी चेहरे पर कृत्रिम प्रेम और सगेपन का भाव लाने का प्रयास कर रहे हैं। मैं सोचता हूँ कितना विशाल दृष्टिकोण प्रदान किया फौज ने हमें। फौजी को सारा राष्ट्र ही एक कुटुम्ब-सा लगता है। देश के किसी भाग में कोई त्रासदी आये हम निस्वार्थ भाव से सेवा कार्य में जुट जाते। जहां भी युनिट जाती वहां कुछ ही दिनों में पेड़-पौधों से स्थान को हरा-भरा कर एक विशाल घर का निर्माण कर ही लेते। रमते योगी की भान्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने हेतु हर समय तत्पर रहते। एक घर से निकल कर दूसरे घर ही तो जाना होता था।

परन्तु आज जिस घर में प्रवेश किया है वह घर कम मकान अधिक दिखाई दे रहा है। सोचता हूँ क्या परिवार के लोग इस मकान को कभी घर में परिवर्तित कर पायेंगे।

मन्त्र ध्वनि अब मेहमानों के शोर के नीचे दबने लगी है। हवन कुंड से उठता धुँआ उपस्थित लोगों की आँखों से मल निकाल रहा है परन्तु फिर भी आँखों में निर्मलता नहीं दिखाई दे रही। इधर हवन कुंड की अग्नि का ताप असहनीय होता जा रहा है उधर बड़े बेटे के कमरे में बज रहा आधुनिक संगीत मन्त्र ध्वनि का गला घोटने का प्रयास कर रहा है। अब हवन की सुगन्ध में भोजन की गन्ध भी घुलने लगी है। कइयों को भूख भी सताने लगी है। गर्मी के प्रकोप से परेशान पत्नी और बेटा मुझे घूर-घूर कर देख रहे हैं मानो कह रहे हो गर्मी से बचाने का कोई उपाय क्यों नहीं करते। हवन की क्रियायें समाप्त होने में नहीं आ रही हैं इसलिए मेहमानों की व्याकुलता भी धीरे-धीरे बढ़ने लगी है। भोजन के इन्तज़ार में बैठे लोग एक-दूसरे से बतियाने के लिए बातों की कड़ियां जोड़ने का प्रयास कर रहे हैं। अब कहने को शायद कोई बात नहीं बची इसलिए मौसम में आए बदलाव को विषय बनाया जा रहा है।

मुझे गाँव वाले घर का आँगन फिर स्मरण हो आया है। जहां लोगों को बात ढूँढ़नी नहीं पड़ती थी, बस बात-बात पर हँसी की फुहारें फूटने लगती थीं। कुएँ की मुंडेर पर जल भरते ग्रामवासी पसीने से तर-बतर हो एक-दूसरे के लिए कार्य करते हुए बात-बात पर ठहाके लगाते रहते। पीपल के नीचे चबूतरे पर बैठे-बैठे ग्रीष्मकाल की दुपहरियां गुज़ार देते। खुले आसमान के नीचे रात-भर रामायण-महाभारत की कथाओं का आयोजन चाँदनी की शीतल

छाया में ही कर दिया जाता। और अंधेरी रात में आकाश को निहारते यह आभास होता कि सारा ब्रह्माण्ड ही एक बहुत विशाल घर है और इसमें रहने वाले सभी जड़, चेतन, जलचर, नभचर, थलचर इस के सदस्य।

'स्वाहा-स्वाहा' का मिश्रित स्वर मुझे पुनः यथार्थ में खींच लाता है। गायत्री मन्त्र की द्रुत गति और स्वाहा-स्वाहा का उत्साही उच्चारण पूर्णाहुति का समय निकट आ जाने का संकेत है। पत्नी स्वचलित यंत्र-सी जलती अग्नि में घी और हवन-सामग्री डालती जा रही है। स्वाहा का मिश्रित स्वर मुझे भी ऐसा ही करने का निर्देश दे रहा है। बच्चों को भी वलात् हवन कुंड के पास पूर्णाहुति के लिए लाया जा रहा है। संगीत बन्द करने के निर्देश जारी किए जा रहे हैं। पत्नी का ध्यान मुख्य द्वार की ओर है। उस का बार-बार मुख्य द्वार की देखना, इस बात का संकेत है कि वह किसी की प्रतीक्षा कर रही है।

हवण कुंड में उठती लपटों को देख मुझे अपने फौजी मित्र सुखचैन का आखिरी सांसें गिनता चेहरा नज़र आने लगा है। यज्ञशाला की ज्वाला-सा उसका भगमां और सूर्ख होता चेहरा। मौत की दहलीज पर भी मुस्कुराता सुखचैन। मेरा एक हाथ उसके हाथ में है तथा दूसरा उस के रक्त रंजित ललाट पर। आज उसने आतंकियों के एक बंकर को नष्ट कर दर्जनों शत्रुओं को मार गिराया परन्तु उन की एक गोली पर शायद सुखचैन सिंह का भी नाम लिखा था। वह कुछ बोलना चाह रहा है पर उसकी बन्द होती पलकें और अस्त होते सूर्य-सा उस का मुख मण्डल कुछ ओर ही संकेत दे रहे हैं। मेरे कानों में यह शब्द गूंज रहे हैं।

जो लड़े दीन के हेत सूरा सोई

राष्ट्ररूपी हवन कुंड में सुखचैन ने अपने प्राणों की आहुति दे दी। इधर पंडित जी ने भी पूर्णाहुति के लिए ऊँचे स्वर में मन्त्र के साथ स्वाहा का अंतिम उच्चारण किया। सब ने स्वाहा के मिश्रित स्वर के साथ हाथ में पकड़ी हवन सामग्री हवन कुंड में डाल दी और धीरे से भोजन की ओर सरक गये।

अचानक पत्नी की आँखें अंतिम आहुति के साथ गंत की ओर उठ गईं। मैं उस के 'अरे बाह' से ही समझ गया कि उसकी प्रतीक्षा पूर्ण हुई है। उस का मुंह बोला भाई AC का भारी भरकम बक्सा उठाये घर के भीतर प्रवेश कर रहा है। लेकिन मेरी आँखों में सुखचैन सिंह अभी भी घूम रहा है। वो सुखचैन जिस ने इस माटी को ही अपना घर माना और अन्ततः इसकी धूली में ही विलीन हो गया।

उसका गृहप्रवेश सम्पन्न हुआ। मेरी आँखों से बहे आँसू हवन कुंड में विलीन हो पूर्णाहुति का कार्य कर जाते हैं और मैं उस सुखचैन के आगे नतमस्तक हो जाता हूँ जिस ने धरती की गोद को अपना घर बना लिया।

०००

पुस्तक समीक्षा

प्रयोगधर्मी लघुकथाओं का सार्थक संग्रह : हो चुका फैसला

□ डॉ. हरिसिंह पाल

पुस्तक	:	हो चुका फैसला (लघुकथा-संग्रह)
लघुकथाकार	:	डॉ० रामनिवास 'मानव'
प्रकाशक	:	अमित प्रकाशन के० बी०-67, कविनगर, गाज़ियाबाद (उ०प्र०)
मूल्य	:	100,00 रुपये

कथा-साहित्य की लघुत्तम विधा है-'लघुकथा', जो सामाजिक कुरीतियों, विद्रूपताओं और विरोधाभासों के यथार्थ-चित्रण के साथ-साथ जीवन के सार्थक क्षणों और उज्जवल-पक्ष को सफलतापूर्वक उजागर करती है। आज लघुकथाओं में विभिन्न प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं। जीवन के विविध पक्षों को जीवन्त प्रतिबिम्ब लघुकथाओं में प्रतिबिम्बित होता है। सुपरिचित लघुकथाकार और प्रख्यात दोहाकार डॉ० रामनिवास 'मानव' का सद्य प्रकाशित लघुकथा-संग्रह 'हो चुका फैसला' इस तथ्य की पुष्टि करता है। इस संग्रह में कुल बयालीस प्रयोगधर्मी लघुकथाएं संगृहीत हैं। ये सभी लघुकथाएँ, अपनी वैचारिक अन्विति, अनुभूति की गहनता, सामासिकता और दोहों जैसी कसावट आदि विशेषताओं के चलते, पाठक के साथ अन्तरंग सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हैं। डॉ० 'मानव' की लघुकथाओं में विषय की विविधता है, कथ्य की गहन संवेदना है, सामाजिक पकड़ और अद्‌भुत प्रभावोत्पादकता है। डॉ० 'मानव' मूलतः ग्रामीण पृष्ठभूमि से हैं। इसलिए उनकी लघुकथाओं के पात्र ग्रामीण समाज से ही हैं। बड़कू, काका, छोटे, हलसोतिया भाई, बदलू, कुन्नू, मुन्नू, मुखिया, मुन्ना जैसे पात्र अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराते हैं, तो नगरीय (आधुनिक) समाज के मालती, माघवकान्त, सुरेन्द्र 'साहिल', तोमर, सुमन, ज्ञान प्रकाश, हसीना शर्मा, मिसेज रीटा, रंधावा, बंसल, मलिक, शर्मा (रमेश कुमार), रेखा, पतंगा, नीरज आदि भी मौजूद हैं। शुरू की छः लघुकथाओं में काका मुख्य पात्र हैं, तो तेरह लघुकथाओं में लघुकथाकार ने अपनी उपस्थिति एक द्रष्टा या भोक्ता के रूप में दर्ज़ करवायी है।

* *684, इन्द्रा पार्क, नई दिल्ली-45 फोन : 5036556*

लघुकथा के आकार पर विद्वानों में प्राय: मतभेद ही रहे हैं। सच तो यह है कि लघुकथा को शब्दों की सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता। हां, सामान्य कथाओं से तो उसे आकार में कम होना ही चाहिये। कुछ चतुर कथाकार चुटकलेनुमा रचना को लघुकथा मानने की भूल करते हैं। डॉ० 'मानव' ने, इन सब मापदंडों से अलग हटकर, लघु और लघुत्तम, दोनों आकार की लघुकथाएं लिखीं हैं। इस संग्रह में 'हत्या', 'फिल्म' और 'झिड़की' आकार में लघुत्तम हैं, तो 'आदर्श बेटा', 'बराबरी', 'हो चुका फैसला', 'जंगल के बीच', 'दौड़', 'सिद्धान्त', 'सर्वे की सफलता' आदि लघुतर हैं, शेष सभी लघुकथाएं हैं ही।

हर रचनाकार, किसी-न-किसी रूप में, अपनी रचनाओं में अवश्य ही उपस्थित रहता है, भले ही वह द्रष्टा हो या फिर भोक्ता। डॉ० 'मानव' भी 'आदर्श बेटा', 'बाप का दर्द', 'मां का मतलब', 'बेटे की नाराजगी', 'बच्चे' आदि लघुकथाओं में स्वयं और सपरिवार उपस्थित प्रतीत होते हैं। दरअसल लघुकथाकार ने तटस्थ रहकर, खुली आंखों से, समाज और परिवेश को देखा है। इसलिए इन लघुकथाओं में समाज का यथार्थ और कटु यथार्थ जीवन्त रूप में प्रतिबिम्बित हुआ है।

प्रस्तुत संग्रह की 'और क्या बात करूँ ?'' लघुकथा में वृद्धावस्था की विवशता है। 'सावन की लुएं' में ग्रामीण जीवन की सहज स्मृति प्रतिबिम्बित है। 'बाप-बेटा', 'आदर्श बेटा', 'बाप का दर्द', 'मां का मतलब', 'बेटे की नाराजगी', 'बच्चे' आदि लघुकथाओं में पारिवारिक रिश्तों की गर्माहट पूरी संजीदगी के साथ उपस्थित है। 'बराबरी' में बड़े बेटे के परिवार में बड़े होने की अन्तर्व्यथा को उकेरा गया है। 'अपने लोग' में, समाज के दुरंगेपन और दब्बूपने को नंगा किया गया है। 'हो चुका फैसला' में जिसके नाम पर प्रस्तुत संग्रह का नामकरण किया गया है, भारतीय न्याय-व्यवस्था की विद्रूपताओं पर करारा व्यंग्य किया गया है। 'जंगल के बीच' लघुकथा में सफ़ेदपोश समाज के जातीय दंश को उजागर करने का प्रयास हुआ है। यह इस संग्रह की श्रेष्ठतम लघुकथाओं में प्रमुख है। इसमें जातीय मानसिकता का कटु यथार्थ है। समाज की विद्रूपताओं पर तीखा व्यंग्य भी है। 'सिद्धान्त' में भी यही भाव स्पष्टत: देखा जा सकता है। 'सर्वे की सफलता' में शासकीय भ्रष्टाचार तथा 'सौदेबाज़ी' में राजनीति और तथाकथित अध्यापक-संघों की अन्तर्कथा की पोल खोली गई है। 'सम्मान' लघुकथा में साहित्यिक सम्मानों, 'प्रैस-विज्ञप्ति' में झूठी प्रशंसाओं और 'साहित्यिक मुर्दाख़ोर' में दिखावटी मातमपुर्सी पर व्यंग्य किया गया है। 'सोने की चेन' में रोज़गार की विवशता तथा 'अल्टीमेटम' में अपहर्त्ताओं की मानवीयता को प्रस्तुत किया गया है।

डॉ० 'मानव' प्रयोगधर्मी लघुकथाकार हैं। विवेच्य संग्रह की सभी लघुकथाएं प्रयोगधर्मी हैं। विषयवस्तु एक-सी भले ही दिखती हो, मगर ट्रीटमेन्ट में विविधता है। 'सुपारी', 'विवशता' तथा 'फर्ज़ी एन्काउन्टर' लघुकथाओं का आधार समाचार-पत्र की सुर्खियां हैं, तो 'पिशाचमोचन' पत्रात्मक शैली में रचित है। 'हसीना शर्मा' किस्सागोई, तो 'हे राम !' राजनैतिक विवाद को समेटे हुए है। 'दादा गणेशीलाल' रेखाचित्र का-सा आनन्द लिये हुए है। इन लघुकथाओं में समकालीन युगबोध की कसमसाहट बड़ी बारीकी और बेबाकी से उभरी है। शिल्प की दृष्टि

से इनकी शब्दावली सरल और सहज है, व्यर्थ की मीनाकारी, विशेषण-दर-विशेषण और अलंकरण आदि से रहित है। इन लघुकथाओं में वैयक्तिक और सामाजिक यथार्थ घुलमिल-सा गया है, जो इनकी सफलता, मार्मिकता और प्रमाणिकता का प्रतीक है।

०००

यादों में..... (चार मुक्तक)

❑ अशोक 'दर्द'

(एक)

यादों में अब तक,
है सलामत वह मंजर।
जब गुलाब तोड़ने की चाहत में,
कांटों से छिल गए थे हाथ॥

(दो)

तितलियों के पंखों से
छूटे रंग,
अब तक सहेज कर रखे हैं मैंने;
कविताओं की किताब के
पन्नों पर॥

(तीन)

यादों में
ज़िन्दा है अब तक,
वो छायादार बरगद,
और मिट्टी का कच्चा घर;
कांटों भरा तन्हा रास्ता,
और नंगे पांव सफर॥

(चार)

अब तक हैं उन
उंगलियों में दाग,
जिनसे पकड़ी थी कभी
आग॥

०००

खंजन नयन : संवेदना और शिल्प एक अवलोकन

❑ दीदार सिंह

पुस्तक	:	खंजन नयन : संवेदना और शिल्प
लेखक	:	डा. रवीन्द्र रैणा
पृष्ठ	:	150
मूल्य	:	300 रु.
प्रकाशक	:	बी. दास प्रकाशन 361115 वारेग कालोनी श्रीनगर दिल्ली 110035

डॉ० रवीन्द्र रैणा ने 'खंजन नयन : संवेदना और शिल्प' शोध पुस्तक में अमृत लाल नागर के उपन्यास 'खंजन नयन' के हवाले से नागर जी की उपन्यास कला का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है। साथ ही सम्पूर्ण हिन्दी-उपन्यास-साहित्य का विवेचन करते हुए नागर जी से पूर्व के तथा समकालीन उपन्यासकारों की रचनाओं का भी परिचय दिया है।

केवल अमृत लाल नागर के उपन्यासों का विश्लेषण ही नहीं अपितु प्रेमचन्द से लेकर आज तक के उपन्यास-साहित्य, इसकी मूलभूत विशेषताएं, विकास, प्रवृत्तियां, नये प्रयोग, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, बौद्धिक तथा विभिन्न विचारधाराओं का अवलोकन डॉ० रैणा जी ने प्रस्तुत किया है।

पुस्तक सात खण्डों में विभक्त है जो प्रेमचन्द और प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास से शुरू होती है। लेखक ने उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द को प्रथम मौलिक उपन्यासकार तथा युगप्रवर्त्तक माना है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों को उद्धृत करते हुए लिखा है, ''प्रेमचन्द शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज़ थे। पर्दे में कैद पद-पद पर लांछित और असहाय नारी-जाति के ज़बरदस्त वकील थे। गरीबों और बेबसों के महत्त्व के प्रचारक थे।''

यहां एक बात स्पष्ट करनी ज़रूरी है कि लेखक ने पुस्तक की प्रस्तावना में स्वीकार किया है-''खंजन नयन : संवेदना और शिल्प'' नामक इस रचना में मैंने अनेक विद्वानों के ग्रन्थों, निबन्धों, पत्रिकाओं से यथास्थान पर्याप्त सहायता ली है।'' अर्थात् अपनी बात की पुष्टि में लेखक ने उक्त सामग्री का प्रयोग किया है।

सन् 1918 में छपे प्रेमचन्द के उपन्यास 'सेवासदन' को एक नवीन दिशा का सूचक मानते हुए प्रेमचन्द के उपन्यासों की विशेषता के बारे लेखक का कहना है कि प्रेमचन्द के

* 613/3 नानक नगर जम्मू- 180004

उपन्यासों में एक क्रम-बद्ध विकास देखा जा सकता है। प्रेमचन्द ने अनावश्यक आदर्शवादिता का बहिष्कार किया, जो उस समय के उपन्यासों में एक प्रमुख विशेषता कही जा सकती थी। 'रंगभूमि' में प्रेमचन्द ने पहली बार अपने कथा-क्षेत्र का अधिक विस्तार किया। भारतीय जनता का शोषण, देशी नरेशों व ज़मींदारों की स्थिति, अंग्रेज़ों के मायाजाल, शासक-वर्ग की अत्याचारी मनोवृत्ति तथा सत्याग्रह आन्दोलन आदि इस उपन्यास के विषय हैं। कथानक की दृष्टि से 'कायाकल्प' को महत्त्वपूर्ण रचना माना गया है। डॉ० राम विलास शर्मा ने प्रेमचन्द को हिन्दुस्तान की नई राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार माना है और इस पुस्तक के लेखक का भी मानना है कि साहित्यिक-क्षेत्र में मुंशी जी की सब से बड़ी देन सामाजिक चेतना है। आगे लेखक ने प्रेमचन्द के समकाली उपन्यासकारों और उनकी कृत्तियों का संक्षिप्त परिचय देते हुए उस समय उपन्यासों में नये प्रयागों का भी संकेत दिया है। प्रेमचन्दोत्तर काल में आंचलिक मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे जाने लगे।

संयोग और दैव-घटनाओं की अपेक्षा जीवन में मनुष्य के मस्तिष्क और मन का अधिक प्रभाव और महत्त्व है। संसार का वास्तविक नाटक मानव हृदय और मस्तिष्क का नाटक है। अर्विन, मार्क्स और फ्राइड की खोजों ने उपन्यासकार में भी नई जागृति ला दी। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय आदि इसी श्रेणी के उपन्यासकार है। ऐतिहासिक उपन्यासों के पीछे लेखक ने दो मुख्य प्रवृत्तियों का ज़िक्र किया है। एक-मानवतावादी चेतना से वर्तमान के संदर्भ में अतीत का चित्रण, और दूसरी-मार्क्सवादी चेतना से अनुप्राणित होकर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सहारे प्राचीन इतिहास का विवेचन-विश्लेषण अपनी मान्यताओं की दृष्टि और प्रचार के लिए।

वृन्दावन लाल वर्मा, चतुर्सेन शास्त्री, अमृत लाल नागर, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, राहुल सांस्कृत्यायन, यशपाल रांगेय राघव आदि ऐसे ही ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं।

1950 के बाद आंचलिक उपन्यासों का स्वरूप भी स्पष्ट हो गया। इसमें मुख्य नाम नागार्जुन व रेणु के आते हैं। इस संदर्भ में अमृतलाल नागर के विषय में लेखक का मानना है कि समकालीन कथा-प्रवृत्तियों में से आदर्शवादी, यथार्थवादी, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, मनोविश्लेषणात्मक तथा आंचलिकता आदि का समावेश इनकी कृत्तियों में हुआ है।

पुस्तक के दूसरे खण्ड में नागर जी के जीवन का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनकी रचनाओं से भी परिचित कराया है जिसमें कोई पंद्रह उपन्यास और एक कहानी-संग्रह का ज़िक्र है। लेखक के अनुसार नागर जी आगरा में 17 अगस्त 1916 ई० को पैदा हुए। उनके दादा बीस वर्ष पहले गुजरात से आकर लखनऊ में बस गए थे। नागर जी इन्टर तक ही शिक्षा प्राप्त कर सके। पहले बीमा कंपनी में कुछ समय के लिए डिसपैचर के पद पर नौकरी की, फिर सम्पादक बने, वहां से फिल्म-जगत में चले गए, वहां भी मन नहीं टिका तो आकाशवाणी में ड्रामा-प्रोडयूसर नियुक्त हुए। यह काम भी रास नहीं आया तो फ्री-लान्सर लेखक बन गए क्योंकि आकाशवाणी में उन्हें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की कमी लगी। 45 वर्ष की आयु में प्रतिभा जी से विवाह हुआ। काफ़ी संघर्षपूर्ण उनका जीवन रहा।

पुस्तक के तीसरे खण्ड में उपन्यास 'खंजन नयन' का कथासार दिया है और इसका विश्लेषण करते हुए कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं की ओर संकेत किया है। यह उपन्यास 'सूरसागर' के रचयिता महांकवि सूरदास के जीवन पर आधारित है और इसका शीर्षक भी सूरदास जी के एक पद से लिया गया है। जैसा कि हम सभी सूरदास जी के जीवन के बारे में पढ़ते-सुनते आए हैं कि वे भगवान् कृष्ण के बाल और सखा रूप के भक्त और गायक थे- महात्मा प्रवृत्ति के थे। नागर जी ने उनका ऐसा स्वरूप नहीं घड़ा। नागर के सूरदास बिल्कुल हम जैसे ही साधारण व्यक्ति हैं। सूरदास ज्योतिष विद्या के सिद्धहस्त हैं- मन्त्र विद्या भी जानते हैं। उनमें महात्माओं वाले गुण होते हुए भी हम जैसी कमज़ोरियां भी हैं। 'खंजन नयन' का सूरदास हमारी मर्ज़ी के अनुसार का नहीं, वल्लभ का नहीं, विहश्लेश का नहीं-वह नागर जी का सूरदास है, उसको उन्होंने मन से घड़ा है, अपने संस्कारों से तराशा है, अपनी ऊंचाइयों पर उठाया है और मानवीय कमज़ोरियों से भी परख कर देखा है। नागर जी ने राधाकृष्ण सम्प्रदाय को ही प्रधानता देने की कोशिश की है।

कथानक का धरातल पूर्णतः धार्मिक है। मथुरा, गोकुल, काशी, गोवर्धन का सजीव वातावरण लेखक की संस्कारी प्रवृत्ति का परिचायक है। नागर जी ने सूरदास कालीन वातावरण को पुनः मंचित किया है। डॉ. रैणा लिखते हैं-लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में सूरदास का जीवन चरितों, किंवदंतियों तथा सूर की स्वयं रचित रचनाओं में प्रस्तुत विचारों के आधार पर लिखा है। जिस प्रकार सूरदास जी ने अपने साहित्य में समन्वयात्मक दृष्टिकोण को अपनाया उसी भांति नागर जी ने सूरदास के व्यक्तित्त्व का समन्वयात्मक पहलू पाठकों के समक्ष रखने का प्रयत्न किया है। सूरदास जी के जीवन वृत्त और उनकी परम भावुकता जो उत्तम काव्य-रचना के लिए परमावश्यक है- के समन्वय का सुन्दर प्रयास है। न तो इसमें इतिहास की शुष्क इतिवृत्तात्मकता है और न सूरदास के काव्य की आलोचक की भांति विवेचना दी है। उपन्यासकार ने बड़ी ही चतुराई से इन दोनों की नीरसता और वैज्ञानिकता से उपन्यास को बचाया है। साथ ही तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था का चित्रण करना भी नागर जी नहीं भूले।

सूरदास जी की ख्याति कथावाचक के रूप में फैल चुकी होती है। उनके कथा कहने का ढंग अद्वितीय है। वे अपनी रुचि कि पंक्तियां समधुर कंठ से गाकर सुनाते तो श्रोता लोग मन्त्र-मुग्ध हो जाते हैं।

अच्छी-से-अच्छी रचना भी आलोचना अथवा निन्दा से नहीं बच पाती। 'खंजन नयन' के बारे भी श्री गोपाल प्रसाद व्यास ने एक बड़े उपन्यासकार के हवाले से लिखा है-उस उपन्यासकार का नाम नहीं दिया-उस उपन्यासकार की टिप्पणी है-'खंजन नयन' में है क्या ? न कहानी है, न उपन्यास, न दर्शन, न मनोविज्ञान न प्राचीनता, न कथ्य, न शिल्प, इधर-उधर की किंवदंतियां और कथानकों को जोड़कर चूंचूं का मुरब्बा बना दिया है प्यारे ने। भई चलती का नाम गाड़ी है, छप रहा है, बिक रहा है, लोग हैं कि ढोल पीटे जा रहे हैं।

यह एक फरस्टेडिट मन की स्वीमिंग स्टेटमेंट लगती है। जैसा कि डॉ. रैणा ने उक्त

उपन्यास का अध्ययन प्रस्तुत किया है इस से किसी भी आक्षेप की पुष्टि नहीं होती। इस में कहानी भी है- बड़ी मार्मिक कहानी, उपन्यास भी है, दर्शन, मनोविज्ञान, नवीनता, प्राचीनता, कथ्य, शिल्प, सब कुछ है।

उपन्यास उपन्यास है, वह चाहने पर इतिहास नहीं बन सकता। उपन्यास दर्शन व मनोविज्ञान को छू सकता है लेकिन उसका शस्त्र नहीं बन सकता।

पुस्तक के चौथे खण्ड में पात्र-विश्लेषण अथवा चरित्र-चित्रण के संदर्भ में दो प्रणालियों का ज़िक्र किया है एक-प्रत्यक्ष प्रणाली, जिसे वर्णनात्मक शैली भी कहते हैं जहां लेखक स्वयं ही पात्र के स्वभाव की परतें खोलता है। दूसरी है परोक्ष प्रणाली जिसमें उपन्यासकार का प्रयास यही रहता है कि रंगमंच पर न जा कर पात्र को रंगमंच पर प्रस्तुत करना। चरित्र-चित्रण की आधुनिक उत्कृष्ट कला यही है कि अपने पात्रों को प्राण-शक्ति से संपन्न करके लेखक उनको जीवन की रंगस्थली में दुःख-सुख से आंख-मिचोली करने के लिए छोड़ दें। जीवन के घात-प्रतिघात, उत्कर्ष-अपकर्ष में बहता हुआ चरित्र स्वयं को अनावृत्त कर, अपनी दुर्बलता-सबलता, कुरूपता-सुरूपता का प्रदर्शन करें। लेखक का कार्य केवल दूर बैठकर पात्र की गतिविधि का निरीक्षण करना और उसमें सतत् प्राणधारा प्रवाहित करते रहना मात्र है।

'खंजन नयन' में सूरदास के अतिरिक्त यदि और कोई प्रभावशाली पात्र है तो वह है स्त्री पात्र कन्तो। कन्तो सूरदास की प्रेमिका और उपन्यास की नायिका है। यों तो सारे उपन्यास में केवल दो ही स्त्री पात्र हैं। शेष सभी पात्र कहीं-न-कहीं अवसर पाते ही सूरदास के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं और किसी-न-किसी पहलू को स्पष्ट कर जाते हैं- संदर्भ को जोड़ते हैं।

कन्तो एक आंख से कानी, दूसरी आंख से उसे भी साफ़ दिखाई नहीं देता। मुख पर चेचक के दाग़ हैं-कुरूपता की प्रतीक, नदी में कश्ती चला कर गुज़ारा करती है। लेकिन वह मन की बहुत सुन्दर है। उसमें बहुत से गुण हैं जो बाहर से दिखाई नहीं देते। वह सूरदास से निःस्वार्थ प्रेम करती है। उपन्यासकार ने कन्तो के व्यक्तित्त्व में निजतावादी एवं समष्टिवादी विशेषताओं का समन्वय प्रस्तुत करके उसे पुरानी परंपरागत सीमाओं से ऊपर उठाया है। कन्तो जहां अपनी इज्ज़त की रक्षा के लिए आजीवन संघर्षरत रही वहां उसने सूरदास के अन्धेपन की लाठी बनकर संघर्ष किया। कन्तो के चरित्र में मनोवैज्ञानिक सूत्र बड़ी गहराई तक प्रविष्ट हैं। सूरदास को कन्तो का सहारा मिलता है लेकिन वह अपने श्याम मन के सामने निरन्तर रहते हैं। सूरदास कई बार उस से दूर रहने का प्रयास करते हैं लेकिन नहीं रह पाते। आकर्षण बढ़ता ही जाता है- लोग तरह-तरह की बातें करते हैं- लेकिन उनको कोई अलग नहीं कर पाता। सूरदास सदैव अपने श्याम मन के कारण अन्तर्द्वन्द्व में पड़े रहते हैं। कभी उस से मुक्ति पाते हैं, कभी फिर उस में फंस जाते हैं।

कन्तो के चरित्र में हमें त्याग की भावना के दर्शन होते हैं। वह हर एक सुख को त्याग कर सूरदास जी के साथ रहना चाहती है। पर त्यागती है, पुरुष के साथ रह कर भी शारीरिक

सुख त्यागती है। वह चाहती है सूरदास महान् बनें। कन्तो कई बार सूरदास को सचेत करती है। लेकिन स्वयं कमज़ोर नहीं पड़ती। सूरदास को अयोध्या जाना होता है, किन्तु रास्ता भटकने के कारण एक पठानों के गांव में फंस जाते हैं जहां कुतुबुद्दीन मौलवी के साथ झड़प में कन्तो मारी जाती है।

पुस्तक के पांचवें खण्ड में डॉ. रैना नागर जी की कलागत विशेषताओं की चर्चा करते हैं। लेखक का मानना है कि 'खंजन नयन' उपन्यास आंचलिक नहीं कहा जा सकता लेकिन भाषा किसी हद तक एक आंचल विशेष की भाषा है। नागर जी ने ब्रज भाषा का खुल्लमखुला प्रयोग किया है। उन्होंने अवधी खड़ी बोली आदि का भी प्रयोग किया है, लेकिन बहुलता ब्रज की है। 'खंजन नयन' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इस की भाषा भी उस ऐतिहासिक काल विशेष से बहुत कुछ मेल खाती है जो उस समय की बोलचाल की भाषा थी। नागर जी भाषा के पारखी हैं। उनकी हिन्दी गद्य की अभिव्यंजना शैली में अपूर्व योगदान है। उन्होंने 'खंजन नयन' में जहां तत्सम प्रधान शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया साथ ही तद्भव तथा मिश्रित भाषा का एक विशिष्ट स्तर रखते हैं जो पात्रों की गरिमा, उनके सांस्कृतिक धरातल, उनके बौद्धिक अथवा भावात्मक सौंदर्य को विकीर्ण करने में सक्षम होती हैं। 'खंजन नयन' की भाषा स्थान और पात्र को देखते हुए बदलती रहती है। खड़ी बोली ब्रज और अवधी का नाव पर मथुरा से अयोध्या की ओर, काशी की यात्रा नदी के बीच यात्रा तो है ही, वह एक भाषा यात्रा भी है।

'खंजन नयन' में चित्रित देशकाल और वातावरण की बात करते हुए डॉ. रविन्द्र रैणा ने लिखा है कि उपन्यास की स्वाभाविकता की दिशा में देशकाल, वातावरण की रक्षा का मुख्य स्थान होता है। उपन्यास में वर्णित घटनाओं की सत्यता का विश्वास दिलाने के लिए उपन्यासकार अपने कथानक को तत्कालीन वातावरण के संदर्भ में पूर्ण यथार्थता एवं संजीवता से प्रस्तुत करता है कि पाठकों के सम्मुख समूचा युग ही तैर जाता है और उपन्यास भी असंदिग्ध हो जाता है।

प्रत्येक रचना के पीछे कोई मनोरथ या उद्देश्य होता है। 'खंजन नयन' किस उद्देश्य से लिखा गया- इस विषय में डॉ. रैना जी के निष्कर्ष कुछ इस प्रकार हैं-सूरदास जी पर आज तक अनेकों छोटे-मोटे ग्रन्थ लिखे गए लेकिन उन में, सूरदास जी के किसी एक पक्ष को ही लिखा गया, किन्तु 'खंजन नयन' में सूरदास जी के हर पक्ष को उभारा गया है। नागर जी सूरदास के जीवन वृत्त को कोई एक प्रामाणिक निष्कर्ष दे कर प्रस्तुत करें और इस में उनको सफलता भी मिली है। उपन्यास में पठान सूरदास को काफ़िर कह कर कोल्हू का बैल बनाते हैं और कन्तो को मार डालते हैं यह धार्मिक कट्टरता या वैमन्स्यता का चित्रण तथा कुसंस्कारों को समाप्त करना तथा उस समय चल रहे विभिन्न मतों को मिलाना और समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाना भी नागर जी का उद्देश्य था।

बी. दास प्रकाशन दिल्ली द्वारा डॉ. रवीन्द्र रैणा की 150 पृष्ठों में प्रकाशित पुस्तक 'खंजन नयन' संवेदना और शिल्प लायब्रेरियों तथा साहित्य के विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

ooo

Regd. No. 28871/76

June - July : 2010

Published by the Secretary on behalf of
J&K Academy of Art Culture & Languages, Jammu
and Printed at Rohini Printers, Kot Kishan Chand, Jalandhar City (Punjab)